भगवान बुद्ध के मूल उपदेश

(राहुल सांकृत्यायन कृत मज्झिम निकाय का सरल पाठ)

प्रथम खण्ड

लेखक

डॉ. डी.के. वर्मा

भगवान बुद्ध के मूल उपदेश

(राहुल सांकृत्यायन कृत मज्झिम निकाय का सरल पाठ)

-: प्रथम खण्ड :-

लेखक
डॉ. डी.के. वर्मा

प्रकाशक
बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उ.प्र. (रजि.)
356/340/835, राजगार्डेन कालोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017
मो. 9415941920, 8181819657, E-mail : baks.gpjakhmi@gmail.com

आईएसबीएन : 978-93-95044-37-0
© डॉ. डी.के. वर्मा
बुद्धाब्द : 2565

प्रथम संस्करण 2024

मूल्य : 150 रुपये

सौजन्य से : माता सावित्री फाऊंडेशन, गोरखपुर

प्रकाशक : ज्ञानप्रकाश जखमी

बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसोसिएशन उ.प्र. (रजि.)
356/340/835, राजगार्डेन कालोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017
मो. 9415941920, 8181819657
E-mail : baks.gpjakhmi@gmail.com

मुद्रक

लक्ष्मी ऑफसेट, 539क/100क/240, देवपुरी भवन,
संजय गांधीपुरम, फैजाबाद रोड, लखनऊ-226016

आवरण सज्जा : सन्दीप सुल्तानपुरी

Bhagwan Budh ke Mool Updesh
Writen By Dr. D.K. Verma

भूमिका

भगवान बुद्ध का नाम संपूर्ण विश्व में अत्यंत आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। भगवान बुद्ध की जन्म एवं कर्म भूमि भारत में बौद्ध धर्म का समाप्त हो जाना अनुसंधान का विषय है और इससे अधिक यह भारतीय राजनीति का विषय है। आज मूलरूप में भगवान बुद्ध की वाणी भारत में उपलब्ध नहो है। भारत में यहाँ की मूल भाषा हिन्दी में जो भी बौद्ध साहित्य उपलब्ध है, वह प्रधानतः महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु जगदीश कश्यप और बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर की देन है। मूलरूप में भगवान बुद्ध के द्वारा दिया गया उपदेश जो तत्समय पाली भाषा जो कि हिन्दी की अपभ्रंश मानी जा सकती है, में दिये गये थे। मन श्रद्धावनत हो जाता है और रोमांच हो उठता है कि भगवान बुद्ध ने यह उपदेश दिये होंगे तो उनकी भाषा शैली रोचकता भाव प्रवणता कैसी रही होगी कि अंगुलिमान जैसा दुर्दांत डाकू अपने सारे हथियार फेंक कर एक निहत्थे भिक्षु के पीछे-पीछे चल दिया शांति की खोज में, जिसे प्रसेनजित की सेनाएं नहीं नियंत्रित कर पायीं उसे एक निहत्थे भिक्षु ने त्रैचीवरिक भिक्षु बना दिया। उस पर तब तक किसी ने प्रहार नही किया जब तक भगवान बुद्ध उसके साथ रहे। भाषा, वाणी की मिठास और प्रज्ञा किस तरह की रही होगी कि तत्समय के सारे ज्ञानी, विद्धान, ब्राहमण और राजन्य कोई टिक नही पाया और किसी ने विरोध नही किया सब श्रद्धावनत हुए। आश्चर्य है कि नास्तिक वादी दर्शन की वह व्याख्या जिसके सामने तत्समय का कोई भी विद्धान धर्मगुरू उनके सामने टिक नही पाया। उनके चचेरे भाई के अतिरिक्त उनके विरूद्ध किसी ने षड्यंत्र नही किया, सब उनकी वाणी के गुलाम हो गए। तत्समय के सारे राजे महाराजे से लेकर दुर्दांत डाकू परम सुंदरी अंरपाली जैसी नगर वधू भी उनकी शिष्य हुईं। यदि वह वाणी मूल स्वरूप में प्राप्त होती तो क्या ही आनंद प्राप्त होता। इसका आकलन कर मन रोमांचित हो जाता है। भगवान बुद्ध की मूल वाणी के संकलन में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम बहुत श्रद्धा के साथ लिया जाता है। यह माना जाता है कि यदि राहुल जी न होते तो कदाचित् भगवान बुद्ध की वाणी हमारे पास न होती। किसी ऐसे धर्म का उसकी मूलभूमि से इस कदर विनाश की एक भी पुस्तक न बच पाये। यह पूरे विश्व में अद्वितीय होने के साथ-साथ सुनियोजित और प्रायोजित ही हो सकता है। सम्पूर्ण बौद्धिक वांग्मय में मज्झिम निकाय के महत्ता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि विद्वानों के अनुसार यदि सम्पूर्ण बौद्ध वांग्मय में केवल मज्झिम निकाय ही बचा रहे तो भगवान बुद्ध के मूल उपदेश और उनका विचारधारा संरक्षित रहेगी।

प्रस्तुत पुस्तिका मूलरूप से मज्झिम निकाय का ही सरलीकरण है। इसके सभी पाठ मज्झिम निकाय से ही लिए गए हैं। केवल पहला पाठ कालाम सूत्र अंगुत्तर निकाय से लिया गया है। महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा रचित मज्झिम निकाय में से पाठों का क्रम

यथा सम्भव समान रखने का प्रयास किया गया है। पुस्तिका के अंत में मूल पाठ से मिलान करते हुए अनुक्रमणिका भी संलग्न की गयी है, जिससे मूल पाठ से भिन्नता की दशा में मिलान किया जा सके। प्रस्तुत पुस्तिका में पाठों की मूल भावना में अंतर न आए इसका भरसक प्रयास किया गया है। महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन जी के द्वारा मज्झिम निकाय को मूल तिब्बती संस्करण को उसकी मूलता बनाए रखने के लिए उसे वैसा ही अनूदित कर दिया गया था। इस कारण भाषा में दुरूहता है। प्रस्तुत पुस्तिका में इसी दुरूहता को कम कर जनसामान्य के समक्ष लाने का प्रयास किया गया है।

इस कार्य में श्री रामेश्वर पवन, अधिवक्ता महोदय प्रधान उत्प्रेरक की भूमिका में रहे। वह प्रत्येक मुलाकात में इस कार्य के प्रति प्रोत्साहित करते रहे। इस कार्य में दूसरी सबसे महत्वपूर्ण भूमिका श्री बसंत जी की रही, जिन्होंने इसकी महत्ता को समझा। मैं इन दोनों महानुभावों का विशेष आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह कार्य सम्पादित हो सका। इस कार्य में प्रमुख बौद्ध सलाहकार डॉ0 मिन्दर चौधरी, श्री विनोद चौधरी, डॉ0 शिवांग सिंह के द्वारा की गयी अमूल्य मानसिक सहायता अविस्मरणीय रहेगी। मूल भाषा तिब्बती से शब्दशः अनुवाद की दुरूहताओं और मूल पालि भाषा तथा जटिल बौद्ध दर्शन के विशिष्ट तथ्यों जिन्हें सदियों से आकान्ताओं के राजनैतिक आक्रमण ने सरल को दुरूह बना दिया था, को वापस सरल करने के प्रयास में कहीं-कहीं भाषा प्रवाह बाधित हो गया है। भाषा के इस प्रवाह को सरल और सुगम बनाने में अत्यधिक समय और श्रम लगा। रचना को अपने स्वरूप में आने के बाद प्रकाशित होने में वरिष्ठ बौद्ध विद्वान श्री ज्ञान प्रकाश जखमी साहब का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। कदाचित उनके सहयोग के बिना पुस्तिका का प्रकाशन संभव नही हो पाता। पुस्तक के आकार को देखते हुए इसे तीन खंडों में विभक्त कर दिया गया है। सम्प्रति इसका प्रथम खंड प्रस्तुत है। मैं इन सभी महानुभावों को साधुवाद ज्ञापित करते हुए यह आशा करता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तिका भगवान बुद्ध के मूल उपदेशों को सरल भाषा में जनमानस के समक्ष लाने में सफल होगी।

(डॉ. डी0के0 वर्मा)
अम्बेडकरनगर

आमुख

भगवान बुद्ध का चिंतन सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। जबकि किसी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ या विचार धारा विशेष से बँधे अथवा उससे भावनात्मक रूप से जुड़े स्वयंभू विषय विशेषज्ञ या स्वयंभू विद्वानों ने तथागत गौतम बुद्ध के विचारों को एक धर्म मानकर उससे स्पर्धा या ईर्ष्या करते हुए कई बिन्दुओं पर विरोध किया, बुद्ध की देशनाओं में खामियाँ ढूँढ़ी। यद्यपि बुद्ध के चिन्तन सूत्र पूर्णतः मानवीय हैं, जिन्हें किसी भी मत-मतांतर की परिधि में नही घेरा जा सकता, कोई भी व्यक्ति यदि वह स्वयं अमानवीय नही है तो दुनिया के किसी क्षेत्र में रहकर किसी भी विचारधारा को अपना आदर्श मानकर वह बिना किसी हिचक के ही तथागत के मार्ग को स्वीकार कर सकता है, बिना किसी आपत्ति के अनुसरण कर सकता है।

जो लोग स्वयं को बुद्ध का अनुयायी कहते हैं, उनमें भी बहुत सारे लोगों ने भी तथागत के सद्चिन्तन को सकारात्मक रूप से समझने की कोशिश नही की। अपने देश भारत वर्ष में स्वयं को बुद्धमार्गी अथवा बुद्ध का अनुयायी कहने वालों में भारी संख्या उनकी ही है, जो उनके चिन्तन को अपने मन के किसी कोने में दुबके बैठे प्रतिशोध को उचित सिद्ध करने के लिए प्रयोग में लाते हैं।

तथागत का चिंतन धर्म-संप्रदाय, जाति-वर्ण, बोली-भाषा, सभ्यता-संस्कृति, रहन-सहन, अमीर-गरीब, आदृत-निरादृत और भी तमाम बातों से कहीं बहुत अधिक ऊपर है। बुद्ध के चिन्तन को स्वीकारने वालों में जहाँ अपने देश में भारी संख्या शोषित-दलित, दमित, वंचित, उपेक्षित-पीड़ित किसान मजदूर, गरीब-मजबूर लोगों की है जो कि जाति व वर्ण के नाम पर लम्बे समय से शोषण दमन और निरादर के शिकार होते आ रहे हैं तो वहीं पर बुद्धत्व प्राप्ति के बाद से ही अब तक मूर्धन्य ब्राहमण व दार्शनिक, राजा-महाराजा खत्तिय क्षत्रिय, वैश्य, वणिक, सेठ, साहूकार और विभिन्न मतावलम्बी भी उनकी विचारधारा को स्वीकारने और उनके चिन्तन का अनुसरण करने वाले रहे हैं।

तथागत बुद्ध ने बिना राग-द्वेष के सारे संसार के न केवल मानव अपितु समस्त प्राणियों के प्रति करूणा भावना से उनके कल्याण के लिए विचार दिए हैं। बुद्ध ने धर्म नही चलाया, उन्होंने उत्तराधिकारी नहीं बनाया। उन्होंने धम्म दिया, धम्म को शाब्दिक रूप से कोई भी धर्म बता सकता है, एक धर्म की संज्ञा दे सकता है किन्तु व्यावहारिक रूप से धम्म का अर्थ केवल और केवल नैतिकता और सदाचार है। इसलिए बुद्ध ने धम्म के प्रचार-प्रसार के लिए श्रमणों (भिक्षुओं) को भी समय-समय पर मार्ग-दर्शन किया, विचार दिया, सचेत किया। उन्हें धम्म के प्रचार प्रसार का तो निर्देश दिया ही साथ ही उनके लिए नियम आदर्श

और आचरण की ओर उनका ध्यान आकृष्ट कराया।

भगवान बुद्ध मार्गदाता हैं, मुक्तिदाता नहीं हैं। हम स्वयं को बुद्ध का अनुयायी तो दिखाना चाहते हैं, स्वयं को उनके मार्ग का अनुगामी कहलाने से गौरवान्वित होना चाहते हैं किन्तु उनके मार्ग का अनुसरण नही करना चाहते। हम बुद्ध के मार्ग को व्यवहार में न उतार कर केवल शब्दो तक रखना चाहते हैं और मुक्ति पहले खोजते हैं।

स्वयं को बुद्धमार्गी, कबीर का अनुयायी फुले, शाहू डा० अम्बेडकर का अनुयायी या अन्य किसी भी महामानव का अनुयायी होने का दावा करने वाले लोगों के जीवन में इन महानायको को आदर्श स्वीकारने के पूर्व का भी जीवन होता है। तब तक ये महामानव हमारे आदर्श नही होते किन्तु उस समय तक हमारा जीवन रिक्त नही होता है। हमें मिले हुए संस्कार व परिवेश के नाते हमारे जीवन में कुछ न कुछ होता है जो इन महानायकों के आदर्शों/सिद्धान्तों से भिन्न होता है। क्या इन महानायकों को आदर्श स्वीकारते समय हमने इनके विचारों से विरोधाभास रखने वाले विचारों को समाप्त कर दिया? यदि नहीं समाप्त किया तो फिर नवीन आदर्श स्थापित कैसे हो सकेंगे? क्या लिखे हुए श्यामपट पर बिना उसे बिगाड़े कुछ नया लिखा जा सकेगा? क्या किसी पात्र से भरे द्रव को हटाए बिना दूसरा द्रव डाला जा सकेगा?

किसी महानायक को अपना आदर्श स्वीकारने से पूर्व का अपना संस्कार आचार-विचार जो महानायक के आदर्शों के अनुरूप नहीं हैं उसे त्यागे बिना हम नए चरित्र को ईमानदारी से जी सकेंगे? तो क्या बुद्धिज्म स्वीकारने के पूर्व की बुद्ध चिंतन या मानव कल्याण या विश्व मंगल भावना के विरोधी चिन्तन को जो तार्किक नही है, वैज्ञानिक नही है अप्राकृतिक है हमने त्याग दिया है? और यदि नही त्यागा है तो फिर हम बुद्ध के विचारों को अपने पुराने खांचे के अनुरूप ठोक पीटकर बैठाने का प्रयास करेंगे। ऐसा ही प्रयास आज बुद्धिज्म में चमत्कार घुसेड़ रहा है, हिन्दुइज्म के पुरोहितवाद को भंते बनकर स्वीकार कर रहे हैं। धम्म को भी वही धर्म बनाए रखना चाहता है जो एक धन्धा है। कोई उपासक हो या भिक्षु यदि हिन्दुइज्म के पाखण्डों का विकल्प बुद्धिज्म में तोड़-मरोड़कर देने में लगा है, तो वह बुद्ध के विचारों वाला उपासक या भिक्षु कैसे हो सकता है। वह तो उपासक होकर भी अंधविश्वासी है और भिक्षु होकर भी चीवरधारी पुरोहित है। जो भी बात या गाथा अतार्किक, अवैज्ञानिक, अस्वाभाविक और अनैसार्गिक हो वह बुद्ध का चिन्तन नही हो सकता। प्रज्ञा करूणाशील या तर्क विवेक से परे को किसी भी बात को बुद्धवाणी मानना परोक्ष रूप से बुद्धिज्म का विरोध है।

प्रस्तुत ग्रंथ 'भगवान बुद्ध के मूल उपदेश' महापण्डित राहुल सांकृत्यायन कृत 'मज्झिम निकाय' का सरल पाठ है। विद्वान लेखक ने 'मज्झिम निकाय' को सरल शब्दों में जनसामान्य के समझ सकने योग्य बनाने में निरंतर कई वर्षों से प्रयास किया है। संपूर्ण

'मज्झिम निकाय' को विद्वान लेखक ने तीन खण्डों में सरल भाषा में तैयार किया है जिसका प्रथम खण्ड सुधी पाठकों के हाथ में हैं। इस महाने कार्य के लिए लेखक की जितनी भी प्रशंसा की जाए वह कम ही है। सामान्य पाठक कई-कई बार पढ़कर भी सांकृत्यायन जी के मज्झिम निकाय को आसानी से समझ नही सकता, जिसे सरल व सुस्पष्ट सबके लिए ग्राह्य बनाने का महती प्रयास संपूर्ण बौद्धिक जाति के लिए लेखक की बड़ी देन है। तथागत बुद्ध के मूल संदेशों को समझने और अपने जीवन में उतारने के लिए निश्चित रूप से प्रस्तुत ग्रंथ सहयोगी सिद्ध होगी ऐसी मेरी सदेच्छा है। जिसके लिए लेखक को पुनः धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

(रामेश्वर पवन)
एडवोकेट
जनपद बहराइच

प्रकाशकीय

महाकारूणिक शन्तिदूत शास्ता तथागत बुद्ध ने लगभग पैंतालिस साल चारिका करके लोगों के कल्याण के लिये, मानवता को सुरक्षित करने के लिए, लम्बे समय तक जगह-जगह जाकर धम्मदेशना दिया। शास्ता तथागत के धम्मदेशना के इस विशाल संग्रह को त्रिपिटक कहते हैं।

शास्ता तथागत बुद्ध ने दुःखी, पाखण्डों और पुरहितों के अत्याचार से त्रस्त आम जनता और सत्य मार्ग से भटके हुए लोगों को अपना संदेश दिया। शास्ता तथागत बुद्ध के इन्हीं शिक्षाओं के कारण ही बुद्ध भूमि (भारत) जम्बूद्वीप संसार का गौरवशाली धम्मभूमि मानी जाती है।

डा0 डी0के0 वर्मा जी एक बौद्ध साहित्य के मर्मज्ञ हैं उन्होंने अपने अथक परिश्रम से तथागत बुद्ध के मूल उपदेशों को संकलित करके बौद्ध जगत व बौद्ध साहित्य को और समृद्धि बनाया है। डा0 डी0के0 वर्मा जी के इस सराहनीय व प्रशंसनीय कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ तथा बुद्ध अम्बेडकर कल्याण ऐसोसिएशन उ.प्र. (रजि.)- लखनऊ उनका आभार व्यक्त करता है। शास्ता तथागत बुद्ध के मूल उपदेशों को मज्झिम निकाय के अनुरूप सरल व सहज पठनीय, लोक उपयोगी, कल्याणकारी व्याख्या करके सरलीकरण भाव, प्रज्ञाभाव की अभिव्यक्ति डा0 डी0के0 वर्मा जी की काबिले तारीफ है।

शास्ता तथागत बुद्ध ने सारे संसार के प्राणी मात्र के कल्याण के लिये कहाँ कि "मैं मार्गदाता हूँ। मुक्ति दाता नही" मुक्ति का मार्ग स्वयं ढूढना है कि मध्यम मार्ग का अनुगमन करना चाहिए यही श्रेष्ठ मार्ग है मानव कल्याण का। शास्ता तथागत बुद्ध कहते हैं कि "अत्ता हि अत्तानों, को हि नाथो परोसिया" मनुष्य स्वयं ही अपना मालिक आप है। दूसरा व्यक्ति उसका मालिक नही हो सकता है।" शास्ता तथागत लोक कल्याण के लिये कहते हैं कि "अत्त: दीपो भव:" अपना दीपक स्वयं बनों। दीपक मानव को ज्ञान का प्रकाश देने के लिये स्वयं अपनी कुर्बानी देता है। अन्धकार रूपी अज्ञानता को जीतने के लिये ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाना जरूरी है। शास्ता तथागत बुद्ध के उपदेशों से परिपूर्ण यह ग्रन्थ पठनीय, अनुकरणीय तथा संग्रहणीय है। लोककल्याणकारी अमूल्य कृति के लिए डा0 डी0के0 वर्मा जी को पुन: साधुवाद। प्रज्ञावान, शीलवान, धम्मवान डा0 डी0के0 वर्मा जी को दीर्घायु होने की मंगल कामना।

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।

सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं।।

सारे पाप कर्मों को न करना, मन को परिशुद्ध रखना, कुशल कार्य करना, परोपकारी, लाभकारी व लोकमंगलकारी कार्य करना यही शास्ता तथागत बुद्ध का अनुशासन व उत्तम धम्मदेशना है।

''भगवान बुद्ध के मूल उपदेश'' पुस्तक का वरिश्ठ साहित्यकार, चिंतक, समाजसेवी, पूर्व प्रधानाचार्य, राजकीय इंटर कॉलेज, बरेली श्रद्धेय डा0 बी0आर0 बुद्ध प्रिय जी ने प्रूफ रीडिंग की है, मैं हृदय से आभारी हूँ और भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशित करने में कितना कामयाब हुआ इस बात का निर्णय सुधी पाठकगण करेंगे। यदि किसी प्रकार की कोई तकनीकी त्रुटि रह गई हो तो मैं सम्मानित पाठकगणों की प्रतिक्रिया का सम्मान करूंगा।

भवतु सब्ब मंगल

23.05.2024
बुद्धपूर्णिमा

धम्म आकांक्षी
ज्ञान प्रकाश जखमी

विशेष आभार

ज्ञानप्रकाश जखमी

नरसिंह पटेल अज्ञानी

गुंजन वर्मा,

अध्यक्ष नीसू वेलफेयर फाउंडेशन, लखनऊ

वसंत वरिष्ठ बौद्धाचार्य, गोरखपुर

एड. एन.के. वर्मा, जनपद गोण्डा

डॉ. अंजू वर्मा, जनपद गोण्डा

डॉ. सर्वजीत सिंह, इलाहाबाद

आलोक वर्मा, अम्बेडकर नगर

पूज्य माता स्वर्गीय
शांती देवीजी
को

विषय सूची

	भूमिका	3
	आमुख	5
	प्रकाशकीय	8
1.	कालाम सूत्र	17
2.	वीमंसक सूत्र	20
3.	भूमिज सूत्र	22
4.	तेविज्जवच्छगोत्र सूत्र	24
5.	चंकि सूत्र	30
6.	पोतलिय सूत्र	33
7.	कायागतासति सूत्र	36
8.	सत्पुरुषधर्म सूत्र	39
9.	सल्लेख (तपश्चर्या) सूत्र	41
10.	सम्यक् दृष्टि सूत्र	44
11.	स्मृति प्रस्थान सूत्र	46
12.	सामगाम सूत्र	48
13.	उपालि सूत्र	51
14.	दक्षिणाविभंग सूत्र	56
15.	चुल्लमालुंक्य सूत्र	57
16.	महापुण्णं सूत्र	59
17.	गोपक मोग्गल्यायन सूत्र	62
18.	बृहायु सूत्र	65
19.	अश्वलायन सूत्र	68
20.	अनुपद सूत्र	72
21.	लोमकसंगियभद्देकरेत सूत्र	74

22.	चुल्लकम्म विभंग सूत्र	75
23.	धातुविभंग सूत्र	77
24.	पुण्योवाद सूत्र	82
25.	छ: छक्कक (षडायतन सूत्र)	84
26.	महाषडायतन सूत्र	87
27.	नगर विंदेय सूत्र	90
28.	पिंडपात (भिक्षा) परिशुद्ध सूत्र	91
29.	इंद्रिय भावना सूत्र	93
30.	चुल्लसंकुलुदायि सूत्र	95
31.	कणत्तथलक सूत्र	98
32.	उद्देश्यविभंग सूत्र	101
33.	महागोसिंग सूत्र	103
34.	महागोपाल सूत्र	105
35.	चुल्लगोपाल सूत्र	108
36.	चुल्लसच्चक् सूत्र	109
37.	महासच्चक सूत्र	112
38.	चुल्लतंहासंख्य सूत्र	116
39.	महातन्हासंख्य सूत्र	117
40.	महा अश्वपुर सूत्र	122
41.	चुल्ल (लघु) अश्वपुर सूत्र	123
42.	सालेय्यक सूत्र	125
43.	नंदकोवाद सूत्र	126
44.	अनुक्रमणिका	130
45.	भगवान बुद्ध के वर्षावास/उपदेश स्थल	132

भगवान बुद्ध के मूल उपदेश

(राहुल सांकृत्यायन कृत मज्झिम निकाय का सरल पाठ)

1. कालाम सूत्र

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत अमृतवाणी में से इस सूत्र की धाक पूरे विश्व में है। यह सूत्र भगवान बुद्ध को सारे धर्म प्रणेताओं में सर्वश्रेष्ठ बनाता है, इसके सामने आज भी समस्त धर्म प्रमुख भगवान बुद्ध के सामने नतमस्तक हो जाते हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद के उपरांत सबसे प्रभावशाली माना जाने वाला यह सूत्र यह स्पष्ट करता है कि स्वतंत्र चिंतन में मानव बुद्धि और प्रज्ञा सर्वोपरि है। आज भी विश्व में प्रचलित किसी भी धर्म में मानव तर्क बुद्धि की इतनी प्रबल व्याख्या कहीं नहीं मिलती है। प्रतीत्यसमुत्पाद के बाद अधिक माना जाने वाला यह सूत्र समस्त बौद्धिक वांगमय को वैज्ञानिक, तार्किक और विश्व मे सर्वश्रेष्ठ बनाता है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध कोशल जनपद में महान भिक्षु संघ के साथ चारिका करते हुए केशपुत्र के कालामों के निगम में पहुँचे। जब कालामों को यह जानकारी मिली कि अर्हत सम्यक् सम्बुद्ध उनके निगम में पधारे हैं तो वह सब जैसे-जैसे जिसको सूचना मिली वह भगवान के दर्शन को पहुँचने लगे। उन सब ने भगवान पूछा- '' भंते! हमारे निगम में बहुत से विद्वान, सिद्ध और धर्मगुरु आते हैं। वह सब दूसरे धर्मों की निंदा करते हैं और अपने ही धर्म को श्रेष्ठ बताते हैं। केवल यही नहीं जहाँ तक हमें याद है सभी धर्मगुरु अपने धर्म की प्रशंसा करते हैं और दूसरे धर्मों की निंदा करते हैं, अनादर करते हैं, तिरस्कृत करते हैं, पक्षरहित करते हैं, ऐसे में हमें सभी धर्मों के प्रति संदेह ही संदेह पैदा होता है और यह समझ ही नहीं आता है कि किस धर्म को सही माना जाए और किस को गलत माना जाए। कृपया हमारी इस शंका का समाधान करने का कष्ट करें कि हम किसे सही माने और किसे गलत?'

'कालामों! यह संदेह उचित है, कालामों! यह शंका उचित है। शंका और संदेह से ही सत्य की प्राप्ति होती है। अत: हे कालामों! आओ मैं तुम्हारा समाधान करता हूँ, तुम किसी बात को इसलिए मत मानो कि वह किसी धर्मगुरु ने कही है, तुम किसी बात को इसलिए मत मानो कि वह धर्म सम्मत है,

.... वह परम्पगत है,
.... वह ऊपर से ठीक लगती है, अनुश्रुत है,
.... मेरे कथनों के अनुसार है,
.... शास्त्र सम्मत है,
.... मेरी सोच के अनुकूल है,
.... बुजुर्गों के द्वारा कही गई है,
.... तर्कसम्मत है,
.... कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है,

.... कही गई बात सुंदर है,

.... अत्यंत सुंदर तरीके से कही गई है,

.... या कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है।

हे कालामों! तुम स्वानुभव से यह जानो कि यह बातें सदोष हैं, यह बातें विज्ञ पुरुषों के द्वारा निंदित है, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दु:ख होता है, तो उन बातों को छोड़ दो।

क्या मानते हो कालामों! व्यक्ति के अंदर जो लोभ पैदा होता है उससे उसका हित होता है या अहित?'

'भंते! अहित होता है'

'हे कालामों! जो व्यक्ति लोभ के वशीभूत होता है वह, चोरी भी करता है, बेईमानी करता है, झूठ बोलता है दूसरों को भी वैसी ही प्रेरणा देता है। यह दीर्घ काल के लिए दुखों का कारण बनता है।'

'भंते! ऐसा ही है।'

'ऐसे ही कालामों! व्यक्तियों के अंदर जो द्वेष होता है वह उनके हित के लिए होता है या अहित का लिए?'

'भंते! अहित के लिए।'

'इसी तरह कालामों! मनुष्य के अंदर मोह या राग होता है तो यह मनुष्य के हित के लिए होता है या अहित के लिए?'

'भंते! अहित के लिए।'

'हे कालामों! जो व्यक्ति मोह के वश में होता है वह मोह के वशीभूत होकर चोरी करता है, बेईमानी और अन्य असामाजिक कृत्य भी करता है। और दूसरों को भी वैसी ही शिक्षा देता है। और यह दीर्घकाल के लिए उनके दुख का कारण बनता है। इसीलिए हे कालामों! तुम किसी बात को इसलिए मत मानो कि वह किसी धर्मगुरु ने कही है, तुम किसी बात को इसलिये मत मानो कि वह धर्म सम्मत है–

.... वह परम्परागत है,

.... वह ऊपर से ठीक लगती है.

.... अनुश्रुत है,

.... मेरे कथनों के अनुसार है,

.... शास्त्र सम्मत है,

.... मेरी सोच के अनुकूल है,

.... बुजुर्गों के द्वारा कही गई है,

.... तर्कसम्मत है,

.... कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है,

.... कही गई बात सुंदर है,

.... अत्यंत सुंदर तरीके से कही गई है,

.... या कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है।

हे कलामों! तुम स्वानुभव से यह जानो कि यह बातें सदोष हैं, यह बातें विज्ञ पुरुषों के द्वारा निंदित है, इन बातों के अनुसार चलने से अहित होता है, दु:ख होता है, तो उन बातों

को छोड़ दो।

'क्या मानते हो कालामों! व्यक्ति के अंदर जो अलोभ होता है अदत्तदान की भावना होती है उससे उसका हित होता है या अहित?'

'भंते! हित होता है'

'हे कालामों! जो व्यक्ति लोभ के वशीभूत नहीं होता है वह चोरी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, बेईमानी नहीं करता और दूसरों को भी वैसी ही प्रेरणा देता है। यह दीर्घ काल के लिए उसके और उसके परिवार के लिए सुख शांति का वाहक बनता है।'

'हाँ भंते! ऐसा ही है।'

'ऐसे ही कालामों! व्यक्तियों के अंदर जो अद्वेष, प्रीतिसुख होता है वह उनके हित के लिए होता है या अहित का लिए।'

'भंते! हित के लिए।'

'इसी तरह कालामों! मनुष्य के अंदर अमोह या विराग होता है तो यह मनुष्य के हित के लिए होता है या अहित के लिए?'

'भंते! हित के लिए'

अतः 'हे कालामों! जो व्यक्ति मोह के वश में नहीं आता, वह मोह के वशीभूत हो कर न तो झूठ बोलता है, न चोरी करता है, न बेईमानी करता है और न ही अन्य कोई अमानुषिक कृत्य ही करता है। और दूसरों को भी वैसी ही शिक्षा देता है। और यह दीर्घकाल के लिए उनके और उसके परिवार समाज और देश के लिए कल्याणकारी होता है। इसीलिए कालामों! मैं पुनः कहता हूँ कि तुम किसी बात को इसलिए मत मानो कि वह किसी धर्मगुरु ने कही है, तुम किसी बात को इसलिए मत मानो कि वह धर्म सम्मत है

.... वह परम्परागत है,
.... वह ऊपर से ठीक लगती है,
.... अनुश्रुत है,
.... मेरे कथनों के अनुसार है,
.... शास्त्र सम्मत है,
.... मेरी सोच के अनुकूल है,
.... बुजुर्गों के द्वारा कही गई है, तर्कसम्मत है,
.... कहने वाले का व्यक्तित्व आकर्षक है,
.... कही गई बात सुंदर है,
.... अत्यंत सुंदर तरीके से कही गई है,
.... या कहने वाला श्रमण हमारा पूज्य है।

हे कालामों! अतः तुम स्वानुभव और तर्क प्रज्ञा से यह जानो कि यह बातें दोषरहित हैं, यह बातें विज्ञ पुरुषों के द्वारा प्रशंसित हैं, इन बातों के अनुसार चलने से हित होता है, इनका पालन परिवार, समाज व देश के लिए कल्याणकारी होता है, तो उन बातों को ग्रहण करो।

भगवान के सुभाषित को सुनकर हर्षित हो कालामों ने भाषण का ध्वनिमत से अभिनंदन किया और कहा कि आज से भगवान हम सबको अपना अंजलिबद्ध उपासक मानें।

*****

2. वीमंसक सूत्र

भगवान बुद्ध के श्रीमुख से निःस्रत अमृतवाणी का यह अत्यंत मूल्यवान अंश अपने गुरु की परीक्षा की अनुमति देता है। इसके माध्यम से भगवान बुद्ध यह अनुमति देते हैं कि अपने गुरु की परीक्षा लो फिर स्वीकार करो। कालाम सूत्र की भांति यह भी अद्वितीय है। इसकी तुलना कहीं नहीं प्राप्त होती। विश्वभर में फैले समस्त धर्म सम्प्रदायों के अधिष्ठाता स्वयं को सीधे ईश्वर का पुत्र और प्रतिनिधि मानते हैं। श्रीमद्‌भागवतगीता में श्रीकृष्ण स्वयं को ही सब कुछ मानते हैं और कहते हैं कि मैं ही सब कुछ हूँ। सारी सृष्टि मुझसे है। सीधी बात, कोई प्रश्नचिन्ह नहीं? मैं जो चाहूँ वह करूँ, सारी सृष्टि मुझसे ही उत्पन्न है। कोई प्रश्न ही नहीं, वहीं, भगवान बुद्ध यह कहते हैं कि पहले अपने गुरु की परीक्षा लो फिर उसे स्वीकार करो।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन में विहार करते थे। एक दिन उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित किया।

भिक्षुओ! आपको अधिकार है कि अपने शास्ता / गुरु की परीक्षा लो फिर उसे स्वीकार करो, आपको यह अधिकार है। मैं इसे विस्तार से समझाता हूँ। जब कोई भी उपदेशक या धर्मगुरु गाँव में आता है और वह लोगों से मिलता-जुलता है, तो सभी विज्ञ लोग अनजाने में ही उसकी परीक्षा लेते हैं। भले ही वह उनके मुँह पर कुछ न कहें फिर भी यह देखा जाता है कि अमुक गुरु या धर्मोपदेशक में क्या बुराइयाँ हैं या क्या अच्छाइयाँ हैं। उन्हें कितना क्रोध आता है या वह कितन शांत हैं। उनका अपने मन पर कितना नियंत्रण है? धन के प्रति इनकी आसक्ति कितनी है? कहीं यह लोगों को बहला-फुसला कर धन कमाने का कार्य तो नहीं कर रहे हैं। अपने पास धन एकत्र करते हैं अथवा नहीं। भोजन और अन्य द्रव्यों के लालची तो नहीं हैं। यदि वह वास्तव में त्यागी हैं केवल थोड़े से ही संतोष करने वाले हैं। संसाधनों को एकत्र नहीं करते हैं, उकसाने पर भी कटुवचन नहीं बोलते हैं। हर समय शांत रहते हैं। केवल धर्म और जनकल्याण की बात ही करते हैं। इसके बाद यह भी परीक्षण किया जाना चाहिए कि धर्म उपदेशक कहीं भय से तो संन्यास धारण नहीं किए हैं। उनका यह सद्गुण कितने समय से है? ख्याति प्राप्त करने के पहले से या उसके बाद से, जब संसाधन नहीं रहते तब लोग मजबूरी में ही सही दुर्गुणों से दूर रहते हैं, परंतु ख्याति प्राप्त होने के पश्चात जब लोगों से सम्मान प्रतिष्ठा और द्रव्य प्राप्त होने लगते हैं तब उनका व्यवहार बदल जाता है। अतः कहीं उनके अंदर यह सद्गुण ख्याति प्राप्त करने के बाद से ही तो नहीं प्रारम्भ हुए हैं अर्थात पहले यह किसी दोष के लिए दंडित तो नहीं हुए रहे हैं। यह भी परीक्षण किया जाना चाहिए कि उकसाने पर उनका व्यवहार कहीं प्रगल्भ तो नहीं हो जाता है? सामान्य अवस्था में

जब हम संतुष्ट और प्रसन्न रहते हैं तब शांत रहना साधारण बात है। परंतु कष्ट की स्थिति में जब हम भूखे हों या पीड़ित हों, शारीरिक कष्ट में हों, गम्भीर रूप से घायल हों या जान-बूझ कर हमें उकसाया जाय तब हम कितना शांत रहते हैं यह वह सद्गुण होता है जो गुरु या शास्ता में अनिवार्य रूप से होना चाहिए। इस तथ्य की मीमांसा अर्थात परीक्षण किया जाना चाहिए। यह परीक्षण करने के बाद धर्म श्रवण करना चाहिए। यदि कोई दोष उनमें ज्ञात होता है तो तत्काल ऐसे गुरु का त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार भली प्रकार सम्परीक्षा करने के उपरांत ही गुरु या शास्ता से धर्म श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार धर्म की गवेषणा होती है और अर्हत की अन्वेषणा होती है।

भगवान के इस तार्किक और वैज्ञानिक उद्बोधन से सम्प्रहर्षित हो समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने सम्भाषण का अभिनंदन किया।

*****

3. भूमिज सूत्र

भगवान बुद्ध द्वारा इस सूत्र के माध्यम से धर्म के कतिपय उन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर दिये गए हैं जो तत्समय उनके शिष्यों को जन सामान्य से प्राप्त होते थे। कई बार ऐसा होता था कि ब्राह्मण उनके शिष्यों से इस तरह के प्रश्न करते थे कि वह उनका संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते थे। ऐसी दशा में वह उस प्रश्न का उत्तर भगवान बुद्ध से प्राप्त करते थे। प्रस्तुत अंश में ऐसा ही विवरण उद्धृत करते हुए प्रशिक्षित व अशिक्षित व्यक्ति का उदाहरण देकर प्रश्न का उत्तर दिया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध राजगृह में वेणुवन के कलंदकनिवाप में विहार करते थे। उस समय अचिरवत समणुद्देश्य, पास के जंगल मे कुटिया बनाकर रहते थे। एक दिन राजकुमार जयसेन घूमते- टहलते हुए अचिरवत समणुद्देश्य की कुटिया पर पहुँचे। यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के उपरांत राजकुमार जयसेन ने अचिरवत समणुद्देश्य से पूछा-

'अग्निवेश! मैंने सुना है कि आप भिक्षु प्रमाद रहित हो, निरंतर उद्योगशील, एकाग्र चित्त हो, संयम से विहार करते हैं। परंतु आप को उद्योगशील होने की क्या जरूरत आपका न तो घर-परिवार है और न ही कोई जिम्मेदारी। आप तो मजे में एकांत विहार करते हैं। इसमें उद्योगशील होने की क्या जरूरत है?'

राजकुमार! यह आप नहीं समझ पाएँगे हम भिक्षु किस तरह के एकांतवास और उद्योगशीलता से विहार करते हैं और हमारा उद्देश्य क्या होता है? हम सत्य की प्राप्ति के लिए निरंतर उद्योगशील रहते हैं जिससे जनकल्याण हो सके।

'अग्निवेश! कृपया विस्तार से बतावें आपके एकांतसुख विहार से देश और समाज को क्या लाभ है?'

राजकुमार! भिक्षु, अपने एकांत विहार चिंतन-मनन से स्वयं भी अपरिग्रही होता है और समाज को भी लाभान्वित करता है राजकुमार हम अपरिग्रही हैं। हम केवल उतना ही रखते हैं जितना आज के लिए आवश्यक है कल की चिंता न करते हुए सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं। हम एकाहारी हैं केवल दोपहर के पूर्व ही भोजन करते हैं। इससे हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है, इससे हम बल और स्फूर्ति प्राप्त करते हैं और अप्रमादी हो सत्य का अन्वेषण करते हैं। हमारे शास्ता ने शांति और मुक्ति के लिए अष्टांग मार्ग का प्रवर्तन किया है जिस पर चलकर व्यक्ति इसी जीवन में ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। राजकुमार! हमारे जीवन नियम अत्यंत कठिन है और इस नियम का अनुसरण करते हुए भी हमें आनंद की प्राप्ति होती है और इसी आनंद और सुख की प्राप्ति का उपदेश करते हुए हमारे शास्ता भगवान बुद्ध ने जिस मार्ग का प्रणयन किया है। उसमें बिना भोगों के ही आनंद की प्राप्ति होती है, परम शांति की प्राप्ति होती है।

आयुष्मान अचिरवत के ऐसा कहने पर राजकुमार बिना कुछ बोले या प्रतिक्रिया किए ही उठकर चले गए। यह देखकर अचिरवत समणुद्देश्य भगवान बुद्ध के पास गए और पूरा वृत्तांत कह सुनाया। यह सुनकर भगवान बोले-

' अग्निवेश ! इसे वह कैसे जान सकते हैं । जो चीज निष्काम्यता से ही जानी, समझी और महसूस की जा सकती है, उसे राजकुमार बिना निष्कामयता को जाने कैसे समझ लेंगे? यह सम्भव नहीं है । जैसे अग्निवेश दो प्रशिक्षित हाथी या अश्व हों और दो अप्रशिक्षित अदांत या अविनीत या जंगली हाथी या अश्व हों उनमें से जो अदांत या अप्रशिक्षित हैं । वह प्रशिक्षण की कला, प्रशिक्षण की प्रवधि को क्या जानेंगे अर्थात नहीं जान पाएँगे । अग्निवेश जैसे ! दो मित्र हों और एक पर्वत के पास उसकी सुंदरता को देखने का प्रयास करे । उनमें से एक साथी पर्वत के शिखर पर चढ़कर नीचे उस पार की सुंदरता देखे और दूसरा पर्वत के ऊपर नहीं चढ़े और पहाड़ की जड़ में ही खड़ा रहे तो क्या मानते हो कि जो साथी नीचे खड़ा है, वह भी पर्वत के ऊपर खड़े साथी के बराबर की सुंदरता देख पाएगा?

यह सम्भव नहीं है अग्निवेश ! यदि तुमने अन्य बातों की तरह यह भी बताया होता तो राजकुमार अवश्य ही समझ लेता ।

अग्निवेश ! जैसे जंगल से लाए गए हाथी को महावत प्रशिक्षित करता है, प्रशिक्षण की प्रक्रिया में सबसे पहले किसी प्रशिक्षित हाथी की सहायता से उस पर नियंत्रण पाता है। उसे तमाम तरह की जंगली आदतें छोड़ना सिखाता है। उसे कर्णप्रिय शब्द समझना और प्रतिक्रिया देना सिखाता है । प्रशिक्षण की प्रक्रिया में जब वह अपनी जंगली आदतें छोड़ देता है तो उस शिक्षण का अगला पाठ सिखाया जाता है, जिसमें उसे महावत के आदेश पर उठना, बैठना, चलना, रुकना, दाएँ-बाएँ मुड़ना सिखाया जाता है । जब वह इन सभी निर्देशों को भली प्रकार सीख जाता है तो उसे सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता है । इसमें चोट लगने या घायल होने पर भी नियंत्रित रहने और अपने महावत को बचाकर निकालना सिखाया जाता है। उसे वार से बचना सिखाया जाता है और जंजीर आदि अस्त्रों का संधान सिखाया जाता है । जब तक वह घायल रहने पर भी शांत रहना और फिर अपने महावत की रक्षा करना नहीं सीख जाता तब तक उसका प्रशिक्षण पूरा नहीं होता । ऐसे ही जब तक वह समस्त अस्त्रों का संधान और दुश्मन के अस्त्रों से अपना बचाव करना नहीं सीख जाता तब तक उसका प्रशिक्षण पूरा नहीं होता ।

अग्निवेश ! ऐसे ही जब सामान्य व्यक्ति की बौद्ध धर्म में दीक्षा होती है तब सबसे पहले उसे शिक्षापदों का ज्ञान कराया जाता है । शिक्षापदों (नियमों) में भली प्रकार पारंगत हो जाने के बाद उसे भोजन की मात्रा पर नियंत्रण करना सिखाया जाता है अर्थात उसे केवल उतना ही भोजन करना बताया जाता है जितना शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक हो । भोजन करने पर नियंत्रण करना सीख लेने के उपरांत उसे मन एवं शरीर पर नियंत्रण करना सिखाया जाता है । अर्थात् अष्टांगिक मार्ग और विपस्सना की शिक्षा दी जाती है । ठीक उसी तरह से जैसे हाथी को इतना प्रशिक्षित किया जाता है कि संग्राम में घायल होने पर भी वह क्रोधित नहीं होता, शिष्य को यह सिखाया जाता है कि उसे कितना भी क्यों न उकसाया जाए वह क्रोध नहीं करेगा, शांत बना रहेगा । उस तरह से प्रशिक्षित होने पर ही उसे भिक्षु स्तर प्राप्त होता है । यह सब बातें एक भिक्षु ही समझ सकता है तो राजकुमार जयसेन कैसे जान पाएगा? भिक्षु इस तरह से प्रशिक्षित होकर समाज को शील तथा सदाचार की शिक्षा देता है। यदि एक भिक्षु अत्यंत सीमित साधनों तथा अपरिग्रह से युक्त होकर संतोष के साथ रहने तथा कष्ट के समय क्रोधित न होने में स्वयं प्रशिक्षित नहीं होगा तो वह समाज को क्या शिक्षा देगा? अत: अग्निवेश ! शोक मत करो, इसे भली प्रकार मन में धारण करो ।

भगवान के ओज पूर्ण सम्बोधन से संतुष्ट होकर समस्त भिक्षुओ ने भाषण का अभिनंदन किया ।

*****

4. तेविज्जवच्छगोत्र सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा दो वेदपाठी ब्राह्मण तरूणों को समझाते हुए यह बताया है कि ब्रह्म जैसी कोई वस्तु नहीं है । धर्म और विद्या का उद्देश्य मन और शरीर की शांति प्राप्त करना है जिससे समाज और देश सुखी हो और सबका भला हो । जिसको न देखा ,न सुना ,न जाना उसके पीछे भागने से बहुत अच्छा होगा कि जो दिख रहा है उसको भली प्रकार समझें और उसके अनुसार इस तरह का कार्य करें जिससे किसी को कष्ट न हो और सबका कल्याण हो।

ऐसा मैंने सुना

एक समय भगवान बुद्ध अपने भिक्षु संघ के साथ भ्रमण करते हुए कोशल देश में मनसाकट नामक ब्राह्मण ग्राम में पहुंचे । वह उस समय वहां अचिरवती नदी के किनारे वह आंबवन में विहार करते थे। उस समय वहां बहुत से अभिज्ञात, महाशाल (प्रसिद्ध और बहुत धनी) ब्राह्मण सामंतों जैसे चंकि, तोदैया, तारुक्ष, पुष्करसाती,और जानुश्रोणि जैसे विद्वान ब्राह्मण भी निवास करते थे। उस समय एक दिन दो वेदपाठी ब्राह्मण तरूणों (माणवक) वशिष्ट और भारद्धाज यह के बीच बहस हो चली कि ब्रह्म की सलोकता (नजदीक पहुचने) वाला मार्ग वह है जिसे ब्राह्मण पुष्करसाती ने बताया है वहीं भारद्धाज का कहना था कि इसका सबसे आसान वह मार्ग है जिसे ब्राह्मण तारूक्ष ने कहा है। वह एक दूसरे को अपनी बात नहीं समझा सके और आपस मे उलझे ही रहे। ऐसे में वशिष्ठ माणवक ने भारद्धाज से कहा कि यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि इस समय हमारे ग्राम में भगवान बुद्ध पधारे हुए हैं। वह बहुत बड़े विद्वान और ज्ञानी है । क्यों न उनसे ही इस बारे में जानकारी ली जाय। इस पर दोनों ही माणवक तैयार हो गए, और वह भगवान बुद्ध के पास जा पहुंचे। दोनों ने उनसे अपनी बात बताई।

ब्रह्म की सलोकता /समीप आने का मार्ग

सबसे पहले भगवान बुद्ध ने यह स्पष्ट किया कि वह क्या कहना चाहते हैं। उन दोनों माणवकों में से वशिष्ट ने यह स्पष्ट किया कि ब्रह्म की सलोकता अर्थात समीप पहुचाने के बहुत से मार्ग हमारे ग्रंथों जैसे एतरेय ब्राह्मण, तैतरीय ब्राह्मण, छांदोग्य ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य ब्राह्मण आदि धर्मग्रंथ बताते हैं। जैसे गौतम किसी गांव को जाने वाले कई रास्ते हों वैसे ही वह ग्रंथ एक ही जगह पहुंचने के कई रास्ते बताते है। मेरा कहना है कि इन सभी मार्गों में सबसे सरल और छोटा मार्ग वह है जिसे ब्राह्मण पुष्करसाति ने बताया है जबकि मेरे साथी माणवक भारद्धाज का कहना है कि सबसे सरल और सीधा मार्ग वह है जिसे ब्राह्मण तारुक्ष ने बताया है ।

''वशिष्ट ! कृपया यह बतावें कि त्रैविद्य ब्राह्मणों में से क्या कोई एक भी ब्राह्मण

ऐसा है जिसने अपनी आंखों से ब्रह्म को देखा है ?''

''नहीं हे गौतम ?''

''क्या वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राह्मणों का एक भी आचार्य प्राचार्य है जिसने ब्रह्म को अपनी आंखों से देखा है?''

''नहीं हे गौतम।''

''क्या वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राह्मणों के आचार्य प्राचार्यों की सात पिछली सात पीढ़ियों तक कोई है जिसने ब्रह्म को अपनी आंखों से देखा है?''

''नहीं हे गौतम''

क्या वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वजों ,मंत्रों के कर्ता ऋपिओं जिनके गीत, प्रोक्त, समिहित पुराने मंत्र पद जिनको आजकल के ब्राह्मण गाया करते हैं, अकाट्य सत्य मानते है वह अट्ठक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भारद्वाज, वशिष्ट, कश्यप भृगु जैसे एक भी आचार्य प्राचार्य हैं जिन्होंने यह कहा है कि जहां ब्रह्म है, जिसके साथ ब्रह्म है, जिस विषय में ब्रह्म है उन्हें हम जानते हैं और उनको को अपनी आंखों से देखा है?''

''नहीं हे गौतम।''

''इस प्रकार वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक भी ऐंसा नहीं एक, भी उनका आचार्य प्राचार्य नहीं, वेदों के रचयिता ब्राह्मणों, उनकी पिछली सात पीढ़ियों तक कोई ऐसा नहीं जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐंसा कहते हैं कि हम ब्रह्म की सलोकता का उपदेश करते हैं अर्थात जिसको ना जाना, न सुना उसके पास पहुंचने का मार्ग बताते हैं कि यह मार्ग शीघ्र पहुचाने वाला है। ऐसे में क्या मानते हो वशिष्ट! ब्राह्मणों का यह कथन क्या अप्रामाणिकता को प्राप्त नहीं हो जाता है?''

''अवश्य हे गौतम! इस तरह तो त्रैविद्य ब्राह्मणों का यह कथन अप्रमाणिक हो जाता है।''

''अर्थात वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न देखते हैं, न जानते हैं उसकी सलोकता के मार्ग का उपदेश करते है कि यही सीधा मार्ग है सरल मार्ग है। जैसे वशिष्ट! अंधों की पंक्ति हो और एक दूसरे से जुड़ी हो आगे वाला भी नहीं देखता, बीच वाला भी नहीं देख पाता और पीछे वाला भी नहीं देख पाता, ऐसे ही वशिष्ट अंधवेणि की तरह ही त्रैविद्य ब्राह्मणों कथन है। आगे वाला भी नहीं देखता, बीच वाला भी नहीं देखता और पीछे वाला भी नहीं देखता है। इससे में उन त्रैविद्य ब्राह्मणों का कथन अनर्गल प्रलाप ही ठहरता है।

वशिष्ट! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण सूर्य, चन्द्रमा ,तारों और बहुत से ऐसे जनों को देखते हैं उनकी प्रार्थना करते हैं तो क्या उनकी भी सालोकता का उपदेश करते हैं कि सूर्य ,चंद्रमा तक कैसे पहुंच जा सकता है या उन तक पहुचने का मार्ग क्या है?''

''नहीं हे गौतम!''

''इस प्रकार वशिष्ट! त्रिविध ब्राह्मण जिनको देखते हैं, प्रार्थना करते हैं उनकी सलोकता का मार्ग भी नहीं बता सकते है ऐसे में जिसको उन्होंने देखा तक नहीं उस पास पहुंचने का मार्ग क्या बतावेंगे? ऐसे में उन का कथन क्या असत्य नहीं हो जाता है?''

"अवश्य गौतम ! इस तरह तो उनका कथन असत्य ही हो जाता है।"

"जैसे वशिष्ट! कोई व्यक्ति चौराहे पर सीढ़ी बनावे परन्तु वह सीढ़ी कहां को जाएगी उसका स्वयं उसे ही पता न हो तो ऐसे में उसका कथन क्या स्वत: मिथ्या नहीं हो जाता?"

"अवश्य हे गौतम ! इस तरह तो उसका कथन अवश्य ही मिथ्या हो जाता है।"

"साधु वशिष्ट! साधु जैसे कोई व्यक्ति अचिरवती नदी के इस किनारे पर आवे और उसे नदी के दूसरे किनारे पर जाना हो। और वह नदी के इसी किनारे पर बैठ कर प्रार्थना करे, तपस्या करे ब्रह्म और अपने इष्ट देवों से मनौती करे कि हे दूसरे किनारे तुम इस किनारे चले आओ तो क्या मानते हो उसके ऐसा करने से दूसरा किनारा उसकी ओर चला अवेगा?"

"नहीं गौतम ! यह संभव नहीं है"

"ऐसे ही वशिष्ट! त्रैविद्य ब्राहृण मिथ्या मार्ग पर चलते हुए ब्रह्म का आवाहन करते हैं, ईशान का आवाहन करते है, प्रजापति का आवाहन करते है, यम का आवाहन करते हैं। और यह कहते हैं कि यह काया छोड़ने के बाद वह ब्रह्म की सलोकता को प्राप्त हो जावेंगे यह संभव नहीं है।

जैसे वशिष्ट! कोई पुरुष अचिरवती नदी को पार करना चाहे परन्तु उसके दोनो हाथ पीछे को ओर ले जाकर बांध दिया जाय और उससे कहा जाय कि वह नदी पार कर उस पार चला जाय तो क्या मानते हो वशिष्ट! वह मजबूत बंधन से बंधा व्यक्ति क्या अचिरवती नदी को पार कर पावेगा।"

"नहीं हे गौतम ! वह इस तरह से कभी भी नदी पार नहीं कर पावेगा।"

ऐसे ही वशिष्ठ! आर्य धर्म में पांच बंधन कहे जाते है, इन्हें आर्य धर्म में आवरण भी कहते हैं यह पांच हैं-

1. कामचछंद - अर्थात् भौतिक सुखों की अभिलाषा ,
2. व्यापाद - अर्थात् द्रोह दूसरों के सुखों से जलन होना,
3. स्त्यान मृद - अर्थात् आलसी होना,
4. औद्धत्य कौकृत्य- अर्थात् उद्धतापन और हिचकिचाहट होना और
5. विचिकित्सा - अर्थात् शंका युक्त रहना।

इन पांच बंधनों से बंधे लोग या ब्राहृण मरने के बाद भी ब्रह्म की सलोकता को प्राप्त कर पावेंगे यह संभव नहीं है। इस मैं दूसरी तरह से समझाता हूं।

वशिष्ट! आपने, अपने गुरुजनों वृद्ध महल्लकों, आचार्यों प्राचार्यों को क्या कहते सुना है कि

"ब्रह्म सपरिगृही है या अपरिगृही?"

"अपरिगृही हे गौतम !"

"ब्रह्म सवैर चित्त है या अवैर चित्त?"

"अवैर चित्त हे गौतम !"

"ब्रह्म सव्यापाद है या अव्यापाद है ?"

''अब्यापाद हे गौतम!''

''ब्रह्म सक्लेश है या अक्लेश?''

''अक्लेश हे गौतम!

''ब्रह्म जितेंद्रिय है या अजितेंद्रिय?''

''जितेंद्रिय हे गौतम!''

''और वशिष्ट! त्रेविद्य ब्राह्मण?

''परिगृही हैं या अपरिगृही?''

''परिगृही हे गौतम?''

''त्रेविद्य ब्राह्मण वैर चित्त है या अवैर चित्त?''

''वैर चित्त हे गौतम!''

''त्रेविद्य ब्राह्मण सब्यापाद है या अब्यापाद?''

''सब्यापाद! हे गौतम!''

''त्रेविद्य ब्राह्मण सक्लेश हैं या अक्लेश!''

''सक्लेश हे गौतम!''

''त्रेविद्य ब्राह्मण जितेंद्रिय है या अजितेंद्रिय?''

''अजितेंद्रिय हे गौतम!''

इस प्रकार वशिष्ट त्रेविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह है और ब्रह्म अपरिग्रह, तो क्या सपरिगृह त्रेविद्य ब्राह्मणों का मिलना अपरिग्रह ब्रह्म से हो सकता है?''

''नहीं हे गौतम!''

''साधु वशिष्ट! साधु सपरिग्रह त्रेविद्य ब्राह्मण काया छोड़ कर मरने के बाद भी परिगृह रहित ब्रह्म के साथ सलोकता को प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं है।

ऐसे ही वशिष्ट त्रेविद्य ब्राह्मण सवैर चित्त हैं और ब्रह्म अवैर चित्त, तो क्या सवैर त्रेविद्य ब्राह्मणों का मिलना अवैर ब्रह्म से हो सकता है?''

''नहीं हे गौतम!''

''साधु वशिष्ट! साधु सवैर त्रेविद्य ब्राह्मण काया छोड़ कर मरने के बाद भी वैर रहित ब्रह्म के साथ सलोकता को प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं है।

वशिष्ट त्रेविद्य ब्राह्मण व्यापाद चित्त हैं और ब्रह्म अब्यापाद चित्त, तो क्या सब्यापाद चित्त त्रेविद्य ब्राह्मणों का मिलना अब्यापाद चित्त ब्रह्म से हो सकता है?''

''नहीं हे गौतम!''

''साधु वशिष्ट! साधु स ब्यापाद चित्त त्रेविद्य ब्राह्मण काया छोड़ कर मरने के बाद भी ब्यापाद रहित ब्रह्म के साथ सलोकता को प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं है।

वशिष्ट त्रेविद्य ब्राह्मण सक्लेश है और ब्रह्म क्लेश रहित, तो क्या सक्लेश त्रेविद्य ब्राह्मणों का मिलना क्लेश रहित ब्रह्म से हो सकता है?''

''नहीं हे गौतम!''

''साधु वशिष्ट! साधु सक्लेश त्रेविद्य ब्राह्मण काया छोड़ कर मरने के बाद भी

क्लेश रहित ब्रह्म के साथ सलोकता को प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं है। इस प्रकार वशिष्ट त्रैविद्य ब्राह्मण गलत रास्ते पर जा फंसे हैं और विषाद को प्राप्त हो रहे हैं ,सूखे में तैर रहे हैं। इसलिए त्रैविद्य ब्राह्मणों की यह त्रिविद्या वीरान (कांतर) जंगल भी कही जा सकती है, ब्यसन या आफत भी कही जा सकती है।

''हे गौतम! मैंने सुना है कि आप ब्रह्म की सलोकता के मार्ग को भली प्रकार जानते हैं तो हम आपसे ही पूछते हैं? हमें ब्रह्म की सलोकता के मार्ग को बताएं जिससे हमारा कल्याण हो।''

''वशिष्ट! यह मेरे लिए दुष्कर नहीं है मैं बताता हूं ध्यान पूर्वक धारण करो। वशिष्ट! जैसा मैंने पहले ही बताया ब्रह्म को किसी ने देखा नहीं, सुना नहीं और जाना भी नहीं तो ऐसे की सलोकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी जिस शांति की अवस्था के बारे में जानना चाहते हो उस के मार्ग के बारे में बताता हूं। यह अष्टांग मार्ग है जिसका अनुसरण कर शांति की वह स्थिति प्राप्त कर सकते हो जिसकी आपको तलाश है। इसके आठ अंग हैं जो इस प्रकार हैं-

अष्टांग मार्ग

1. सम्यक् दृष्टि
2. सम्यक् संकल्प
3. सम्यक् वाक

   शील या सदाचार स्कंध

4. सम्यक् कर्मांत (कर्म)
5. सम्यक् आजीव (जीविका)
6. सम्यक् ब्यायाम (प्रयत्न)

   प्रज्ञा स्कंध

7. सम्यक् स्मृति (स्मृति मान होना)
8. सम्यक् समाधि (विपश्यना)

   समाधि स्कंध

शारीरिक, वाचिक और मानसिक कर्मों के ठीक ठीक ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं, भले बुरे कर्म इस प्रकार हैं-

A. शारीरिक

	बुरे कर्म	अच्छे कर्म
1.	हिंसा	अहिंसा
2.	चोरी	चोरी न करना
3.	ब्यभिचार (यौन)	ब्यभिचार करना न करना

B. वाचिक

	बुरे कर्म	अच्छे कर्म
4.	मिथ्या भाषण	सत्य भाषण

5.	चुगली करना	चुगली न करना
6.	कटु भाषण	मृदु भाषण
7.	व्यर्थ बकवासी होना	अल्पभाषी होना

C. मानसिक

	बुरे कर्म	अच्छे कर्म
8.	लालच	संतोष
9.	प्रति हिंसा	प्रति हिंसा से विरत रहना
10.	मिथ्या धारणा	सम्यक् धारणा

इसी तरह वशिष्ट! राग, हिंसा, प्रतिहिंसा से रहित संकल्प, सम्यक् संकल्प कहलाता है। सम्यक् वचन अर्थात झूठ,चुगली, कटु वचन और बकवास से रहित मीठी और सच्ची बातों को बोलना या सच्ची बातों को इस प्रकार बोलना कि वह प्रिय लगें सम्यक वचन है।

इन्हें शील या सदाचार भी कहते हैं।

इसी तरह से सम्यक् कर्म अर्थात हिंसा, चोरी व्यभिचार से रहित कार्य ही सम्यक् कर्म हैं। झूठी जीविका छोड़ कर सच्चे साधनों से जीविका चलाना सम्यक जीविका हैं (हथियारों का व्यापार, मांस, मद्य, विष का व्यापार करना तत्समय गलत जीविका मानी गई थी)। इंद्रियों पर सैयम बुरी भावनाओं को रोकने तथा अच्छी भावनाओं के पैदा होने का प्रयत्न, अच्छी भावनाओं को कायम रखने का प्रयत्न, सम्यक् व्यायाम या सम्यक् प्रयत्न कहलाता है। इसे प्रज्ञा स्कंध में विभाजित किया गया है।

इसी तरह से शरीर, वेदना और मन के धर्मों, विषयों की स्थितियों, उसके दूषित होने, क्षण विध्वंसी होने को हमेशा स्मरण रखना सम्यक स्मृति है। वशिष्ट! चित्त या मन की एकाग्रता ही समाधि है, चार स्मृति प्रस्थान (कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धम्मानुपश्यना) ही समाधि निमित्त हैं। चार स्मृति प्रधान समाधि के परिष्कार हैं। इन विषयों का अभ्यास करना ही समाधि भावना है। इसे समाधि स्कंध भी कहा गया है।

समाधि का अभ्यास करने से शरीर और मन को शांति मिलती है। मन के सारे विकार, लोभ, मोह, तृष्णा, उपनाह शांत हो जाते हैं। और मुदिता, करुणा, और उपेक्षा का भाव उत्पन्न होता है। यह साधना कर लेने वाला अपरिग्रिही, अवैर, व्यापाद रहित, अक्लेष, जितेंद्रिय और अपने साधनों से संतुष्ट रहने वाला होता है। आपकी भाषा में कहें तो यही ब्रह्म की सलोकता का मार्ग है।''

आश्चर्य भंते! अद्‌भुत भंते!! जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, भटके को मार्ग दिखा दे वैसे ही भगवान आपने हमारी आंखें खोल दीं। आज से हमें अंजलिबद्ध उपासक मानें।

*****

5. चंकि सूत्र

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत अमृतवाणी का यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश है, इस सूत्र में भगवान बुद्ध और वेदों के विद्वानों के साथ हुए शास्त्रार्थ का विवरण दिया गया है। इसी सूत्र में वेदों को अंधों की पंक्ति के नाम से बताया गया और और सिद्ध भी किया गया है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध कोशल में चारिका करते ओप्साद नामक ब्राह्मण ग्राम में पहुँचे। वहाँ वह देववन नामक शाल वन में विहार करते थे। उस समय ओप्साद ग्राम चंकि ब्राह्मण की जमींदारी में था। स्वयं भी चंकि एक बड़े विद्वान वेदों के ज्ञाता और बिम्बिसार के कृपा पात्र थे। ओप्साद के निवासियों ने जब यह सुना कि भगवान बुद्ध का आगमन उनके ग्राम में हुआ है तो वह उनसे मिलने और आशीर्वाद लेने आने लगे। वहाँ के निवासियों में उत्साह इतना अधिक था कि जिसे जैसे ही जानकारी मिली वह वैसे ही उनसे मिलने निकल पड़ा। वहाँ के जमींदार चंकि को जानकारी प्राप्त हुई तो उन्होंने भी अपने अमात्यों को बुला कर भगवान के निवास पर जाने की इच्छा जताई और सवारी तैयार करने का आदेश दिया। ब्राह्मण चंकि के अमात्यों ने कहा कि आप यहाँ के जमींदार हैं, स्वामी हैं, इतने बड़े विद्वान हैं। अतः यह उचित नहीं है आप गौतम के दर्शन करने जाएँ। इसके स्थान पर गौतम को ही आपके पास मिलने आना चाहिए। चूंकि आप दोनों ही ओर से सात पीढ़ियों तक सुजात हैं, वेदों के ज्ञाता हैं, यहाँ के जमींदार हैं, ब्राह्मण होने के कारण वैसे भी श्रेष्ठ हैं, आप 300 से अधिक विद्यार्थियों को शिक्षा भी देते हैं, शीलवान, प्रज्ञावान और गौतम से उम्र में भी वरिष्ठ हैं। अतः आपका उनके पास जाना उचित नहीं है। चंकि ब्राह्मण ने समझाते हुए बताया कि गौतम भी सात पीढ़ियों तक सुजात हैं, विद्वान हैं और इन सबसे अधिक मात्र 29 वर्ष की आयु में राजपद छोड़ कर उन्होंने जन कल्याण के लिए गृह त्याग किया है। मेरी उनसे तुलना नहीं हो सकती। मेरी सवारी मँगवाओं तुम्हें न जाना हो तो मत जाओ।

यह कहकर चंकि भगवान बुद्ध के दर्शन करने पहुँचे। उस समय बहुत से ब्राह्मण भगवान से आशीर्वाद लेने आये थे। वहाँ पर कापथिक नामक ब्राह्मण माणवक (पूर्णकालिक शिष्य या अंतेवासी) भी उपस्थित था। जब ब्राह्मणों एवं विद्वानों से वार्ता चल रही थी उस समय कापथिक बीच बीच में बोल उठता था। भगवान बुद्ध ने कापथिक को रोका और कहा कि बीच में बोलना अच्छी बात नहीं है, जब एक बात समाप्त हो जाए या एक व्यक्ति से वार्ता सम्पन्न हो जाए तब अपनी बात कहनी चाहिए। इस पर ओप्साद के ब्राह्मणों ने कहा कि भगवान इन्हें बोलने दें इन्हें न रोकें, यह हमारे बीच सबसे बड़े विद्वान हैं और अभी विद्या अध्ययन में लगे हुए हैं। भगवान को यह महसूस हुआ कि निश्चय ही यह त्रिवेदों का ज्ञाता कोई बड़ा विद्वान है जिसे यह सब आगे कर रहे हैं।

इस बीच जैसे ही भगवान की निगाह कापाथिक पर पड़ी वैसे ही कापाथिक ने

प्रश्न किया-

'गौतम ! वेद, ब्राह्मणों के मूल ग्रंथ हैं और हम सब ब्राह्मण वेदों मे पूर्ण निष्ठा रखते हैं, हम यह मानते हैं कि केवल वेद ही सत्य है शेष सब मिथ्या है। क्या आप इससे सहमत हैं?'

'भारद्वाज ! आप में से क्या कोई ऐसा ब्राह्मण है, जो यह जानते हैं या उन्होंने देखा है या उन्होंने जीवन मे यह पाया है कि केवल वेद ही सत्य है शेष सब झूठ है असत्य है?'

'गौतम ! ऐसा तो नहीं है।'

'क्या भारद्वाज ! आपके पूर्वजों में, ऋषिओं में अट्ठक, वामक और अन्य आचार्यो ने या उनके पूर्व के या स्वयं जिन्होंने उसे लिखा है क्या वह यह कहते हैं कि वह जानते हैं उन्होंने देखा व अनुभव किया है कि केवल यही सत्य है और शेष असत्य है?'

'नहीं ! भंते !'

इस प्रकार आप में से कोई ब्राह्मण आपके पूर्वज और उनसे भी प्राचीन ऋषिओं जिन्होंने स्वयं इसकी रचना की वह भी यह नहीं कहते कि उन्होंने देखा है या समझा है या महसूस किया है और वह भली प्रकार जानते है कि वेद सत्य है या केवल वेद ही सत्य हैं तो यह तो अंध वेणि परम्परा है जिसमे न आगे वाला जानता है, न बीच वाला जानता है और न अंत वाला ही जानता है।

जैसे भारद्वाज अंधों की पाँति हो वैसे ही वेद हैं जिन्हें न आगे वाला जानता है न बीचवाला और न आखिर वाला यह तो अपने स्वयं स्वीकार किया। अब क्या बताना शेष रह गया है इस तरह से ब्राह्मणों की श्रद्धा बेकार नहीं हो जाती?

इस प्रकार निरुत्तर हो बात बदलते हुए कापथिक बोले-

'गौतम ! ब्राह्मण केवल श्रद्धा ही नही वरन अनुश्रव को भी मानते हैं।'

'अब भारद्वाज ! आप श्रद्धा से श्रुति पर आ गए वैसे वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। फिर भी भारद्वाज यह पाँच कार्य इसी जन्म में दो तरह के फल देने वाले हैं-

1. श्रद्धा 2. रुचि

3. अनुश्रव 4. आकार परिवितर्क

5. दृष्टि निध्यनाक्ष

अच्छी तौर से श्रद्धा किया हुआ भी मृषा, रिक्त और निष्प्रयोज्य हो सकता है और बिना श्रद्धा के भी किया गया सत्य हो सकता है, तथ्य हो सकता है मूल्यवान हो सकता है। भली प्रकार सुरुचि किया हुआ भी असत्य हो सकता है मिथ्या हो सकता है, इसके विपरीत अरुचि वाली वस्तु भी सत्य हो सकती है तथ्य हो सकती है।

इसी प्रकार भली प्रकार श्रुत अर्थात सुनी हुई बात भी मृषा, मिथ्या हो सकती हैं और जो अल्पश्रुत है वह कल्याणकारी उपयोगी सत्य व तथ्य हो सकता है। इसी तरह से भारद्वाज ! भली प्रकार तर्क से पुष्ट किया गया भी असत्य हो सकता है और बिना तर्क किया हुआ भी सत्य हो सकता है तथ्य हो सकता है।

दृष्टि निध्यानाक्ष अर्थात भली प्रकार देखा समझा व पुष्ट किया हुआ भी गलत हो सकता है। मिथ्या हो सकता है। असत्य हो सकता है जबकि बिना दृष्टि निध्यांनाक्ष किया हुआ भी सत्य हो सकता है तथ्य हो सकता है। भारद्वाज सत्यानुवेषण करने वाले विज्ञ व्यक्ति को यह उचित नहीं है कि वह किसी तथ्य को एकांश से 100 प्रतिशत मान ले कि केवल वही

सत्य है और सब मिथ्या है।'

'तो फिर गौतम! सत्यानुरक्षण कैसे होता है कृपया हमें अवगत कराएँ हम आपसे सत्यानु रक्षण पूछते हैं।'

सत्यानुरक्षण-

भारद्वाज! जैसा मैंने अभी पाँच कार्यों के बारे बताया। इन सभी पाँच कार्यों मे एकांश से निष्ठा नहीं करना चाहिए। विज्ञ व्यक्ति को सत्यानुरक्षण के लिए एकांश से निष्ठा नहीं करनी चाहिए।

श्रद्धालु होते समय एकांश से निष्ठा नहीं होनी चाहिए कि केवल यह ही सत्य है शेष सब असत्य है। ऐसे ही रुचि मे भी कोई कितना भी रुचिकर क्यों न हो वह अंतिम रुचिकर नहीं हो सकता, अनुश्रव मे भी कोई भी तथ्य अंतिम सत्य नहीं हो सकता। आकार परि वितर्क तथा दृष्टि निध्यांनाक्ष मे भी कोई भी तथ्य अंतिम सत्य नहीं हो सकता, 100 प्रतिशत सत्य नहीं हो सकता। सभी मे गलती होने की सम्भावना हमेशा रहती है। यह मार्ग है सत्य के अन्वेषण का।

'गौतम! क्या इतने मात्र से ही सत्य की प्राप्ति हो जाती है यह हम आपसे पूछते हैं?'

'नहीं इतने मात्र से सत्य की प्राप्ति नहीं होती। सत्य की प्राप्ति के लिए जो मार्ग है उसे बताता हूँ।

भारद्वाज! आपको एक उपमा से समझाता हूँ। मान लीजिए आपके गाँव में कोई भिक्षु या साधु संन्यासी आता है तो आप तुरंत ही यह मान लेते होंगे कि कोई भला और सज्जन व्यक्ति होगा। परंतु जब उसके सम्मुख आते हैं या उसका उपदेश सुनते हैं तो अपने मन में उसकी परीक्षा लेते हैं, सबसे पहली परीक्षा या जाँच यह होती है कि भिक्षु मे लालच तो नहीं है? दूसरी जाँच परख उनकी इस बात की होती है कि उनमें कोई और दुर्गुण जैसे द्वेष, मोह, क्रोध तो नहीं है। जब यह परीक्षा कर ली जाती है कि इन सब मामलों वह उत्तम हैं और उनमे कोई दोष नहीं है तो भिक्षु के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धा उत्पन्न होने के उपरांत उसकी बातों का ध्यान लगाकर श्रवण करते हैं। श्रवण करने के उपरांत पुन: उसकी परीक्षा करते हैं परीक्षा करने पर यदि ऐसा लगता है कि भिक्षु की बात सही है तो उसमें रुचि उत्पन्न होती है रुचि उत्पन्न होने से और अधिक जानकारी के लिए प्रयास करते हैं, उद्योग करते हैं, प्रयत्न करते हैं। इस तरह सतत प्रयत्न करने से सत्य की प्राप्ति होती है। समय के साथ सत्य मे परिवर्तन होता रहता है। अत: सत्य ऐसी वस्तु नहीं है जो स्थिर रहे। समय अनुसंधान के अनुसार सत्य बदलता रहता है अत: सतत प्रयत्न आवश्यक है।

भंते! सत्य की प्राप्ति के आपने जिन बातों को बताया उनमें सबसे महत्वपूर्ण क्या है?

भारद्वाज! सत्य की प्राप्ति के लिए सबसे महत्व पूर्ण है सतत प्रयत्न। यदि प्रयत्न नहीं किया जाएगा तो सत्य की प्राप्ति नहीं होगी, प्रयत्न के उपरांत अन्वेषण के लिए उत्साह होना चाहिए, उत्साह के उपरांत धर्म निध्यायन अर्थात ध्यान से श्रवण, तत्पश्चात धर्म परीक्षण / परीक्षण से सत्य की प्राप्ति होती है।'

'हे गौतम! आपने हमें सत्य का अनुरक्षण बताया यह हमें अच्छा लगता है हम इससे संतुष्ट हैं पहले हम ऐसा जानते थे कि कहाँ यह काले, ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न शूद्र, मुंडक श्रमण और कहाँ धर्म का संजानन। आप ने मुझ में श्रमणों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। आज से आप हमें अंजलिबद्ध उपासक के रूप मे धारण करें।

*****

6. पोतलिय सूत्र

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से नि:सृत अमृतवाणी का यह महत्वपूर्ण अंश संसार में कामभोगों की नि:सारता से सम्बंधित है इसमें भगवान बुद्ध के द्वारा पोतलिय को विस्तार से यह समझाया गया है कि गृह और सम्पत्ति का त्याग मात्र संन्यास लेने के लिए पर्याप्त नहीं है जो बातें संन्यास के लिए आवश्यक है उसका विवरण इस सूत्र मे दिया गया है।

ऐसा मैंने सुना–

एक समय भगवान बुद्ध अंगुत्तराप के आपण (कस्बे) मे विहार करते थे। एक दिन भगवान प्रात: काल के समय पात्र, चीवर के साथ पिंडचार के लिए आपण में गए और भिखाचार एवं भोजन से निवृत हो दिन के विहार के लिए बैठे ही थे। तभी पोतलिय नामक किसान भी टहलते हुए वहाँ आ पहुँचे। पोतलिय किसान से भगवान ने कहा–

'गृहपति! आसन विद्यमान है यदि इच्छा हो तो बैठें। स्वयं को गृहपति का सम्बोधन पाकर पोतलिय को बहुत बुरा लगा, परंतु वह चुप रहे। पोतलिय को चुप देखकर भगवान ने दोबारा वही कहा कि गृहपति! यदि इच्छा हो तो बैठें। दूसरी बार भी गृहपति चुप रहे। पुनश्च तीसरी बार फिर भगवान ने पूछा तब नाराज होते हुए पोतलिय ने कहा कि यह आप जैसे विद्वान को शोभा नहीं देता कि आप मेरे जैसे गृहत्यागी को गृहपति के नाम से सम्बोधित करें। प्रत्युत्तर में भगवान बोले– 'गृहपति! आपके लक्षण तो गृहपतियों वाले ही हैं कैसे आप यह कहते हैं कि आप गृहत्यागी हो।'

'गौतम! मैंने अपने सारे धन, धान्य, खेत, खलिहान, सोना, चाँदी आदि अपने पुत्रों को दे दिया है और अब मैं पूरी तरह से विरक्त होकर संन्यासी का जीवन जी रहा हूँ और इतना त्याग करने के उपरांत आप मुझे गृहपति के नाम से सम्बोधित कर रहे हैं।

गृहपति पोतलिय! आप जिस प्रकार के व्यवहार या व्यवहार उच्छेद को संन्यास कहते हैं वह व्यवहार या आर्य विनय मे संन्यास नहीं कहा जाता। आर्य विनय में संन्यास इस तरह का नहीं होता है। आर्य विनय में जिसे संन्यास कहते हैं वह मैं आपको बतलाता हूँ। आर्य विनय में यह आठ व्यवहार संन्यासी के लिए आवश्यक माना जाता है–

1. प्राणातिपात अर्थात हिंसा से विरत रहना,
2. अदिन्नदान अर्थात चोरी से विरत रहना,
3. मृषावाद से विरत रहना अर्थात सत्य बोलना,
4. पिशुनवचन अर्थात चुगली से विरत रहना,
5. अभिध्या अर्थात लोभ से विरत रहना,
6. निंदा करने से विरत रहना,

7. अक्रोध अर्थात क्रोध नहीं करना और

8. अभिमान से विरत रहना अर्थात सौम्य बने रहना।

यह आठ कृत्य आर्य विनय में संन्यासी और व्यवहार उच्छेद के लक्षण हैं-

'भंते! यह अच्छी तरह समझ में नहीं आया कृपया से विस्तार से विभाजित करके बताएँ कि कैसे और किस तरह यह आठों धर्म संन्यास के अंग हैं।'

'गृहपति! प्राणातिपात पहला बिंदु है, जब कोई व्यक्ति हिंसा करता है तो उसके इस कृत्य के कारण उसका मन उसे धिक्कारता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। हर प्राणी जो धरती पर है उसे जीने का अधिकार है। हिंसा के कारण ही वह दूसरों के द्वारा भी आलोचना का शिकार होता है और इसी के कारण उसे पूरे समाज में घृणा का पात्र होना पड़ता है। एक सभ्य समाज कभी भी हिंसा, चोरी, व्याभिचार आदि का समर्थन नहीं करता है। इसी कारण से वह निंदा का पात्र होता है यहाँ तक कि उसके परिजन भी उसकी निंदा करते हैं।'

इसी प्रकार से चोरी, चुगली करना, मृषावचन बोलना, लालच, क्रोधी स्वभाव का होना, निंदा करना, घमंड करना, के लिए भी वह अपने घर, परिवार, परिजन के लिए निंदा और उपहास का पात्र बनता है और साथ ही साथ इसी व्यवहार के कारण वह अपनी निगाह में भी गिरता है। गृहपति! यह बताइए कि क्या आप यह चाहते हैं कि यह गुण या अवगुण आपके बच्चों में भी हों?'

'नहीं भंते! हम कदापि ऐसा नहीं चाहेंगे।'

'तो गृहपति! जो लक्षण या गुण धर्म आप अपने बच्चों में नहीं चाहते उसे आप कैसे समझते हैं कि उसे समाज या परिवार पसंद करेगा। आखिर समाज भी तो परिवारों से ही मिलकर तो बना होता है। इसलिए व्यक्तिगत रूप से जो गुण हमें नहीं पसंद हैं या जिन्हें हम नहीं चाहते हैं कि वह हमारे बच्चों में आए तो स्पष्ट रूप से ऐसे गुण धर्म समाज के लिए उत्तम नहीं हो सकते।'

परंतु भगवान यह कैसे हो सकता है कि इन व्यवहारों के उच्छेद ही से समस्त प्रकार के कष्टों का उपशम होता है।'

'गृहपति! जैसे भूख से अति दुर्बल कुत्ता मांस की दुकान के सामने खड़ा हो और दुकान दार उसे भगाने के लिए रक्त में सनी एक हड्डी फेंक दे तो क्या समझते हो उस हड्डी से कुक्कुर की भूख मिट जायगी?'

'नहीं भंते! इस तरह तो कुक्कुर केवल दुख और परेशानी का ही भागी होगा।'
'ऐसे ही गृहपति' संसार के यह भोग, हड्डी मे लगे रक्त के समान हैं जिनसे तृप्ति सम्भव नहीं है यह तृष्णा जैसे-जैसे पूरी की जाती है वैसे-वैसे और उतनी ही बढ़ती जाती है। इसी की प्रतिपूर्ति में मानव जीवन समाप्त हो जाता है। इस तृष्णा का कोई अंत नहीं है। इस पर केवल रोक ही लगा कर पार पाया जा सकता है। तृष्णा की पूर्ति कर कभी भी तृष्णा की पूर्ति नही की जा सकती।

जैसे गृहपति! कोई गिद्ध या कौवा किसी मांस खंड को लेकर उड़े और अन्य पक्षी उसे नोंचे तो क्या मानते हो यदि वह जल्दी ही उसे छोड़ न दे तो वह दुख और परेशानी का भागी नहीं होगा?'

'ऐसा ही है भंते!'

'गृहपति! आर्य श्रावक ऐसा ही सोचता है कि यह भोग ही समस्त दुखों का कारण है। जैसे गृहपति कोई व्यक्ति आग को लेकर हवा की दिशा के विरुद्ध दौड़े तो आग की लपट उस जला नहीं देगी?'

'ऐसा ही है भंते! ऐसा ही है।'

'गृहपति! जैसे किसी व्यक्ति को दो शक्तिशाली व्यक्ति जबरदस्ती अंगारों पर फेंके तो क्या मानते हो वह अंगारों पर गिरकर भी स्वयं बचा पाएगा या वह जान-बूझ कर यदि उसे यह ज्ञान हो कि अंगारों से मैं जल जाऊँगा तो वह स्वयं को नहीं बचाएगा।'

'बिल्कुल भंते! वह जानता है कि आग में गिरा तो मेरी मृत्यु निश्चित है और ऐसी दशा मे वह स्वयं को बचाएगा और निकल भागना चाहेगा।

जैसे गृहपति! बहुत धनवान व्यक्ति हो और वह अपने धन-धान्य के साथ कहीं पर जाए तो क्या उसे चोरों का भय नहीं होगा?'

बिल्कुल भंते उसके पास जितना अधिक धन होगा उसे उतना ही अधिक भय होगा।

ऐसे मे क्या वह धन उसकी जान का दुश्मन नही हो जाएगा?'

'बिल्कुल भंते! जिसके पास जितना ही धन होगा उसे उतनी ही चिंता दुख और परेशानी होगी। जैसे गृहपति किसी जंगल मे फलदार पेड़ पर फल तोड़ने के लिए कोई व्यक्ति पेड़ पर चढ़े और फल तोड़ना प्रारम्भ करे तभी दूसरा व्यक्ति आए और उस पेड़ को आरे से ही काटना शुरू कर दे तो क्या मानते हो? अगर पेड़ पर चढ़ा व्यक्ति शीघ्रता से नीचे नहीं उतर आएगा तो वह दु:ख और परेशानी का भागी नहीं होगा?'

'ऐसा ही है भंते!'

'इसी तरह गृहपति! भोग फल के समान हैं अगर उनका संतुलित, संयमित और प्रज्ञा से उपयोग नही होगा और इसके विपरीत उन्मुक्त और अनियंत्रित उपयोग होगा तो निश्चित रूप से वह मर्मांतक दुख का भागी होगा।'

'आति सुंदर भंते! जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, अंधे को कोई आँख दिला दे वैसे ही भगवान आज आपने हमारी आँखें खोल दीं, आज से आप हमें अंजलिबद्ध उपासक जानें।'

*****

7. कायागतासति सूत्र

भगवान बुद्ध के मुखार विंद से निःसृत अमृतवाणी का यह महत्वपूर्ण अंश आज विपस्यना के नाम से जाना जाता है। इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा विपश्यना को कायागतासति के नाम से बताया गया है और इसकी प्रक्रिया तथा महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन दोपहर में भोजन और विश्राम के उपरांत, संघ में उपस्थित भिक्षुओं में आपस में यह चर्चा चली कि भगवान के द्वारा बतायी गयी कायागति स्मृति या कायागतासति का अभ्यास बहुत ही लाभप्रद है। उनके बीच यह बात चल ही रही थी कि भगवान बुद्ध आ पहुंचे। उन्होंने पूछा कि आप लोग किस बिन्दु पर चर्चा कर रहे थे। जब उन्हें जानकारी हुयी कि कायागति स्मृति सूत्र पर चर्चा हो रही थी तो उन्होंने कहा-

''भिक्षुओं! आप लोगों के स्मरण के लिए मैं कायागति स्मृति का विवेचन करता हूँ। ध्यान पूर्वक सुनें और धारण करें।

भिक्षुओ! कायागति स्मृति के अभ्यास में भिक्षु को सर्वप्रथम ऐसा स्थान तलाश करना होता है जहाँ विघ्न उत्पन्न न हो। आमतौर पर अरण्य या वृक्ष मूल या शून्यागार में भिक्षु काया / शरीर को सीधा कर आसन मार कर बैठता है। स्मरण रखते हुए श्वास लेता है, स्मरण रखते हुए सहज श्वास छोड़ता है। श्वास प्रश्वास के स्थिर होने के पश्चात अपने चित्त को स्थिर करता है। चित्त के शांत होने के पश्चात धीरे-धीरे क्रमश: वह शरीर के सभी अंगों को आँख बंद कर ध्यान करते हुए देखना प्रारम्भ करता है। क्रमश: पैर के तलवे व नाखून से शुरू करते हुए पैर का निचला हिस्सा, क्रमशः पैर का ऊपर का हिस्सा, पेट, बड़ी आंत, छोटी आंत, वृक्क, प्लीहा, यकृत, फुफ्फुस, हृदय, अस्थि, मांस, रक्त, स्नायु, चमड़ा, आँसू, वसा, लार, नासामल, पीब, पसीना आदि शरीर के समस्त सम्भव व ज्ञात अंग-प्रत्यंगों को ध्यान लगाकर आँख बंद कर देखता है। इसी प्रकार क्रम से ऊपर बढ़ते हुए ठोड़ी, नाक, मुँह, कान, मस्तक, केश तक को देखता है और उसकी सुंदरता असुंदरता की निःसारता पर ध्यान लगाता है। जैसे कोई भिक्षु अनाजों से भरी पोटली को खोल कर देखे कि यह गेहूँ है, यह चावल है, यह उरद है, यह मूँग है, यह तिल है, यह मक्का, यह सरसों है। इस प्रकार शरीर के समस्त अंगों को देखे। यह विचार करे कि प्रारम्भ में किस प्रकार यह सारे अवयव अच्छी प्रकार कार्य करते हैं। इस बात को मन में रख कर विचार करे और यह ध्यान करे क्रमशः धीरे-धीरे उम्र और समय के साथ-साथ शरीर के सारे अंगों की क्रियाशीलता घटने लगती है। उम्र और समय के साथ यह सारे अंग शिथिल पड़ने लगते हैं। एक समय ऐसा आता है कि एक-एक

कर सारे अंग शिथिल पड़ते-पड़ते काम करना बंद करने लगते हैं। हृदय की धड़कन कम होते हुए एक दिन बंद हो जाती है तो उस समय सारे अंग बेकार हो जाते हैं। शरीर मृत हो जाता हैं। श्मशान में फेंका हुआ जलाया जाता हुआ देखता है। वह शरीर जो कभी इतना सुंदर था एक समय पर फेंका हुआ जलाकर नष्ट किया जाता है। एक दिन का मृत, दो दिन का मृत, शरीर तीन दिन का मृत शरीर देखे, इससे भी आगे बढ़कर विभिन्न प्रकार के जीवों के द्वारा शरीर को नष्ट किया जाता हुआ देखे और इन सबको अपने ऊपर अवधारित करे कि आगे आने वाले समय में उसके साथ भी ऐसा ही होने वाला है। इससे भिक्षुओ शरीर के साथ जो मोह है, लगाव है, वह कम होता है। और मोह या लगाव कम होने से व्यक्ति की उसके साथ लगी हुई सांसारिक तत्वों सम्बंधी आवश्यकता नियंत्रित होती है। यही मूल है सारे दुखों और कष्टों का। जिसने इस कायागति – स्मृति का अभ्यास कर लिया उसने सभी पुण्य कार्यों हेतु अपने को तैयार कर लिया, ऐसा समझना चाहिए। भिक्षुओ! जैसे महासमुद्र को अपने में व्याप्त कर लिया जाए तो उसमें आने वाली नदियाँ स्वत: ही उसमें समाहित हो जाती हैं, उसी प्रकार जिसने कायागति – स्मृति का अभ्यास कर लिया उसके लिए सांसारिक लोभ, मोह, द्वेष आदि जैसी कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है। भिक्षुओ! जैसे कोई काष्ठ खंड जो जलस्रोत से दूर फेंका हो, सूखा हो और आग जलाने की इच्छा से कोई व्यक्ति उसकी सहायता से आग जलाना चाहे तो क्या वह अग्नि प्रादुर्भूत कर पाएगा?'

'हाँ भंते!

इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने कायांगति स्मृति का अभ्यास किया है, वह अपने कार्य और जीवन में सफल होगा और जिसने इसका अभ्यास नहीं किया है वह सांसारिकताओं से मुक्ति पा सकेगा यह सम्भव नहीं है। भिक्षुओ। जैसे जल का मटका अपने स्टैंड पर रखा हो वह खाली हो और कोई व्यक्ति उसमें जल डालना चाहे तो क्या वह उस घड़े में जल डाल सकता है? '

'हाँ भंते! क्योंकि वह खाली है।'

'इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिसने कायागति स्मृति का अभ्यास नहीं किया है उसे नहीं समझा है, पुष्ट नहीं किया है। उसके अंदर अच्छाइयों के साथ-साथ बुराइयाँ भी प्रविष्ट कर जाती हैं और जिसने कायागति स्मृति को भावित किया अभ्यासित किया है, वह भरे हुए घड़े के जैसा है जिसमें कोई जल नहीं डाल सकता या उसे किसी और विचार से प्रभावित नहीं कर सकता है।

भिक्षुओ! जैसे कोई गीला काष्ठ हो और जलधारा के पास पड़ा हुआ हो और उसकी सहायता से कोई व्यक्ति अग्नि तैयार करना चाहे तो क्या वह तैयार कर पाएगा?'

'नहीं भंते! यह काम तो उसके लिए केवल दुःख और परेशानी का ही है।' 'इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिसने कायागति स्मृति नहीं भावित की है या उसका अभ्यास नहीं किया है। वह इसी जन्म में मुक्ति और शांति प्राप्त कर पाएगा, यह सम्भव नहीं है।

भिक्षुओ! जैसे कोई पूरी तरह लबालब पानी से भरा घड़ा, घड़ोंची पर रखा हो। तो बताओ क्या उसमें कोई पानी डाल सकता है?'

'नहीं भंते!'

'ऐसे ही, भिक्षुओ! जिसने कायागति - स्मृति का अभ्यास किया है उसमें किसी और विचार को समाने के लिए जगह नहीं मिलती है। भिक्षुओ! जैसे पानी से लबालब भरा मटका हो उसे जिस तरह से भी हिलाओ - डुलाओ उसमें से पानी की ही आवाज आती है और निकलने पर पानी ही आता है, ऐसे ही, भिक्षुओ! जिसने कायागति स्मृति का अभ्यास कर लिया है, उसे पुष्ट कर लिया है उस पर किसी गलत बात का असर नहीं पड़ता है। वह केवल कुशल कार्य ही करेगा अकुशल नहीं।

भिक्षुओ! जैसे पानी से भरी काकपेया (पानी से इतना भरा हुआ जलाशय कि कौवा भी किनारे बैठ कर पानी पी ले) पुष्करिणी हो और वह चारों ओर से मजबूत तटबंधों से सुरक्षित हो। सिंचाई के लिए कोई बलवान पुरुष उसके तटबंधे को जहाँ-जहाँ से काटे वहाँ-वहाँ से पानी आने लगे, क्या यह सम्भव है?

'हाँ भंते!'

''ऐसे ही भिक्षुओ! जिसने कायगति - स्मृति का अभ्यास कर लिया उसके लिए भिक्षु होना या अच्छा व्यक्ति होना अत्यंत ही सरल है। भिक्षुओ! जैसे सुभूमि अर्थात खुले में चौड़े स्थान पर भली प्रकार अश्वों से युक्त रथ पूरी तैयारी के साथ खड़ा हो तो क्या मानते हो कोई अश्वसाधक जिधर चाहे उधर रथ को ले जा पाएगा?'

'हाँ भंते! वह ऐसा कर पाएगा।'

'ऐसे ही भिक्षुओ! जिसने भी कायागति स्मृति की भावना कर ली है, अभ्यास कर लिया है और पुष्ट कर लिया है। वह कभी असंतुष्ट नहीं हो सकता। भिक्षुओ! जिसने इस कायागति-स्मृति का अभ्यास कर लिया वह अरतिसह होता है अर्थात उसे उदासी नहीं होती, वह भय भैरवसह होता है। उसे भैरव अर्थात भूतों-प्रेतों का भय नहीं होता। वह शीत, गर्म, भूख प्यास, बिच्छू व सरीसृपों का दंश आघात को सह लेता है, वह परुष वचन, अप्रिय वचनों, कष्टों एवं वेदनाओं को सह सकता है और अंततः इसी जन्म में मुक्ति और शांति का अनुभव करने की क्षमता रखता है।

भगवान के सम्भाषण से संतुष्ट होकर सभी भिक्षुओं ने भगवान का अभिनंदन किया।

*****

8. सत्पुरुषधर्म सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा सामान्य जीवन में नम्रता और विनय को अन्य समस्त गुणों से सर्वोपरि बताया गया है और स्पष्ट किया गया है कि नम्रता और विनय से हीन व्यक्ति कितना भी योग्य क्यों न हो वह समाज के लिए व्यर्थ है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवन में विहार करते थे। उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! सत्पुरुष धर्म और असत्पुरुष धर्म का उपदेश करता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो और धारण करो।'

यदि कोई व्यक्ति उच्च कुल से प्रव्रजित हुआ और समस्त सद्गुणों के बाद भी वह अन्य निम्न कुल से प्रव्रजित भिक्षुओ को नीची निगाह से देखता है और अपने कुल के कारण अभिमान करता है तो यह कार्य अकुशल है और यह असत्पुरुष धर्म है। दूसरी ओर, सत्पुरुष जो उच्च कुल से प्रव्रजित है और समस्त सद्गुणों से युक्त है फिर भी अपने से निम्न कुल से प्रव्रजित हीनगुणों से युक्त और सद्गुणों से रहित भिक्षु से भी अभिमान नहीं करता उन्हें नीचे और गिरी हुई निगाह से नहीं देखता उन्हें यथायोग्य सम्मान देता है तो यह सत्पुरुष धर्म है।

इसी प्रकार, भिक्षुओ! धनवान कुल से प्रव्रजित हुआ व्यक्ति समस्त सद्गुणों के बाद भी यदि वह अन्य निर्धन और सामान्य कुल से प्रव्रजित व्यक्तियों को नीची निगाह से देखता है और अपने धन और ऐश्वर्य के कारण अभिमान करता है तो यह अकुशल कर्म है और असत्पुरुष धर्म है। दूसरी ओर सत्पुरुष जो अतिसम्पन्न और यशस्वी कुल से प्रव्रजित है और समस्त सद्गुणों से युक्त है फिर भी अपने से निम्न कुल से प्रव्रजित हीनगुणों से युक्त और सद्गुणों से रहित भिक्षु से भी अभिमान नहीं करता उन्हें नीच और गिरी हुई निगाह से नहीं देखता उन्हें यथायोग्य सम्मान देता है तो वह है सत्पुरुष धर्म। इसी तरह से उच्च शयन आसन, ग्लान प्रत्यय पाने वाला भिक्षु प्रव्रजित होने पर समस्त सद्गुणों के बाद भी वह अन्य साधारण से प्रव्रजित व्यक्तियों को नीची निगाह से देखता है और अपने उच्च शयन आसन ग्लान प्रत्यय के कारण अभिमान करता है तो यह असत्पुरुष धर्म है। दूसरी ओर, जो उच्च शयन आसन ग्लान प्रत्यय से प्रव्रजित है और समस्त सद्गुणों से युक्त है फिर भी अपने से निम्न कुल से प्रव्रजित हीनगुणों से युक्त और सद्गुणों से रहित भिक्षु से भी अभिमान नहीं करता उन्हें नीच और गिरी हुई निगाह से नहीं देखता उन्हें यथायोग्य सम्मान देता है तो यह सत्पुरुष धर्म है।

इस तरह से, भिक्षुओ! बहुश्रुत और समस्त सद्गुणों से युक्त प्रव्रजित भिक्षु अपने समस्त गुणों के बाद भी वह अन्य समान्य से प्रव्रजित व्यक्तियों को नीची निगाह से देखता है

और अपनी उच्च स्थिति के कारण अभिमान करता है तो यह असत्पुरुष धर्म है। दूसरी ओर सत्पुरुष जो बहुश्रुत है और समस्त सद्‌गुणों से युक्त है फिर भी अपने से कमजोर और हीन गुण से युक्त और सद्‌गुणों से रहित भिक्षु से भी अभिमान नहीं करता उन्हें नीच और गिरी हुई निगाह से नहीं देखता, उन्हें यथायोग्य सम्मान देता है तो यह है सत्पुरुष धर्म।'

भगवान के द्वारा प्रतिपादित इस निष्पक्ष और सुंदर अभिभाषण का सभी उपस्थित भिक्षुओं ने अभिनंदन किया।

*****

9. सल्लेख (तपश्चर्या) सूत्र

भगवान बुद्ध के द्वारा इस उपदेश में तपस्या के वास्तविक अर्थ को बताया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि जिसे हम तपस्या समझते हैं, वह सुख का विहार है। आर्य धर्म में तपस्या क्या है? इसका विवरण इस सूत्र में विस्तार से किया गया है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवन में विहार करते थे। एक दिन सायंकाल प्रतिसल्लायन (ध्यान) के पश्चात महाचुंद भगवान के पास आए और पूछा- 'भगवान! समाज में कई प्रकार के मत या वाद प्रचलित हैं, जिसमें आत्मावाद प्रधान है। हम इसमें से किसे सही माने और किसे गलत? कृपया इसका समाधान करें और आत्मवाद का समाधान कैसे किया जाए? इस पर प्रकाश डालने का कष्ट करें।

आयुष्मान चुंद! आत्मावाद की दृष्टि जहाँ से उत्पन्न होती है, जहाँ यह व्यवहार में लाई जाती है, वहाँ यह मान कर कि यह आत्मा मेरी नहीं है, न मैं इसका हूँ, इसका मुझसे कोई सम्बंध नहीं है। इस प्रकार की सोच विकसित करने से इसका नाश या समाधान होता है। चुंद यह जानते हो व्यक्ति के शरीर में आत्मा नाम की चीज यदि रहती और वह उसके नियंत्रण में रहती तो उसकी अपनी मृत्यु पर उसका पर नियंत्रण होता। व्यक्ति किसी भी तरह शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी उसमें आत्मा रहती और वह व्यक्ति जीवित रहता। परंतु चुंद ऐसा नहीं है, हमारा शरीर जब जीने के लायक नहीं रहता तो हमारे न चाहने पर भी हमारा शरीर नष्ट हो जाता है यदि उसमें आत्मा जैसी कोई वस्तु होती तो निश्चित ही हमारी मृत्यु तभी होती जब हम चाहते। अतः आत्मवाद का विनाश तो इस तथ्य से ही हो जाता है। इसी तरह मैंने प्रतीत्यसमुत्पाद का सूत्र दिया है। इस के आधार पर जो भी मत संज्ञान में आते हैं, उन्हें परखो और जाँच करो तथा उसी के अनुसार जो तुम्हें तार्किक लगे उसे मानो और जो मत या विचार तार्किक नहीं लगे उसे छोड़ दो।

हो सकता है, चुंद कतिपय भिक्षु अपने तर्क बुद्धि से उत्पन्न प्रज्ञा से सुख पूर्वक विहार करते हों और वह इसे ही तपस्या मान कर यह समझते हों कि यही तप है और यह मेरी तपस्या है। परन्तु इसे आर्य धर्म में दृष्टधर्म-सुखाविहार कहते हैं। यह भी हो सकता है कि वह अपने मन के कुतर्कों के शांति हो जाने पर संसार की क्षणिकता को भली प्रकार जान कर शांतचित्त होकर सुखविहार करते हो। चुंद इसे भी आर्य धर्म में तपस्या नहीं करते। इसे भी आर्य धर्म में दुष्ट धर्म सुखविहार ही कहते हैं। आओ चुंद। मैं तुम्हें बताता हूँ कि आर्य धर्म में तप या तपस्या किसे कहते हैं-

1. दूसरे लोग हिंसक होंगे परंतु हम हिंसक नहीं होंगे, यह तप है।
2. दूसरे लोग प्राणि हिंसा करेंगे परंतु हम नहीं करेंगे, यह तप है।

3. दूसरे लोग अदत्तदान लेने वाले होंगे परंतु हम नहीं, यह तप है।
4. दूसरे लोग झूठ बोलेंगे और झूठी गवाही देंगे परंतु हम ऐसा नहीं करेंगे, यह तप है।
5. दूसरे पिशुनवचनी, चुगलखोर होंगे परंतु हम ऐसा नहीं करेंगे, यह तप है।
6. दूसरे लोग परुषवचन अर्थात कटुभाषी होंगे परंतु हम कठोर वचन नहीं बोलेंगे, यह तप है।
7. दूसरे लोग सम्प्रलापी या बकवासी होंगे परंतु हम अल्पभाषी होंगे और व्यर्थ बकवास नहीं करेंगे, यह तप है।
8. दूसरे लोग अभिध्यालु (लालची) होंगे परंतु हम अभिध्यालु नहीं होंगे, यह तप है।
9. दूसरे लोग व्यापाद प्रवृत्ति या हिंसक चित्त के होंगे परंतु हम नहीं होंगे, यह तप है।
10. दूसरे लोग मिथ्या दृष्टि वाले होंगे परंतु हम सम्यक् दृष्टि वाले ही होंगे, यह तप है।
11. दूसरे लोग मिथ्या संकल्प वाले होंगे परंतु हम सम्यक् संकल्प वाले ही होंगे, यह तप है।
12. दूसरे लोग मिथ्याभाषी होंगे परंतु हम सम्यक् भाषी ही होंगे, यह तप है।
13. दूसरे लोग मिथ्या कर्मांत वाले होंगे परंतु हम सम्यक् कर्मांत वाले ही होंगे, यह तप है।
14. दूसरे लोग मिथ्या आजीव वाले होंगे परंतु हम सम्यक् आजीव वाले ही होंगे, यह तप है।
15. दूसरे लोग मिथ्या व्यायाम वाले होंगे परंतु हम सम्यक् व्यायाम वाले ही होंगे, यह तप है।
16. दूसरे लोग मिथ्या स्मृति वाले होंगे परंतु हम सम्यक् स्मृति वाले ही होंगे, यह तप है।
17. दूसरे लोग मिथ्या समाधि वाले होंगे परंतु हम सम्यक् समाधि वाले ही होंगे, यह तप है।
18. दूसरे लोग मिथ्या ज्ञानी होंगे परंतु हम सम्यक् ज्ञान वाले ही होंगे, यह तप है।
19. दूसरे लोग मिथ्या विमुक्ति वाले होंगे परंतु हम सम्यक् विमुक्ति वाले ही होंगे, यह तप है।
20. दूसरे लोग आलसी मृद्ध या प्रमादी होंगे परंतु हम आलस्य मुक्त रहने वाले ही होंगे, यह तप है।
21. दूसरे लोग उद्धत होंगे परंतु हम अनुद्धत वाले ही होंगे, यह तप है।
22. दूसरे लोग संशय वाले होंगे परंतु हम आर्य धर्म में आस्था वाले ही होंगे, यह तप है।
23. दूसरे लोग क्रोधी होंगे परंतु हम दयालु ही होंगे, यह तप है।
24. दूसरे लोग उपनाही (बँधा हुआ बैर) रखने वाले होंगे परंतु हम अनुपनाही ही रहेंगे, यह तप है।
25. दूसरे लोग मृक्षी (अमृशी) वाले होंगे तो भी हम मुदिता की भावना वाले ही होंगे, यह तप है।
26. दूसरे लोग प्रदाष / निष्ठुर होंगे परंतु हम हमेशा दयालु ही होंगे, यह तप है।
27. दूसरे लोग ईर्ष्यालु होगे परंतु हम हमेशा इर्ष्या रहित ही होंगे, यह तप है।
28. दूसरे लोग मत्सरी (कृपण) होंगे परंतु हम हमेशा अमत्सरी ही होंगे, यह तप है।
29. दूसरे लोग कटु होंगे परंतु हम सरल ही होंगे, यह तप है।
30. दूसरे लोग मायावी होंगे परंतु हम अवंचक अमायावी (सरल) और मृदुल ही होंगे, यह तप है।

31. दूसरे लोग स्तब्ध जड़ होंगे परंतु हम सुशील व प्रज्ञावान ही होंगे।
32. दूसरे लोग अतिमानी (अभिमानी) होंगे परंतु हम सरल और मृदुल ही होंगे, यह तप है।
33. दूसरे लोग दुर्वचनी होंगे परंतु हम सुवचनी ही होंगे, यह तप है।
34. दूसरे लोग पाप – मित्र होने परंतु हम कल्याण मित्र ही होंगे, यह तप है।
35. दूसरे लोग प्रमत्त होंगे परंतु हम अप्रमत्त ही होंगे, यह तप है।
36. दूसरे लोग अश्रद्धालु होंगे परंतु हम श्रद्धालु ही रहेंगे, यह तप है।
37. दूसरे लोग जटिल होंगे परन्तु हम ऋजु/सरल होंगे, यह तप है।
38. दूसरे लोग निर्लज्ज होंगे परंतु हम लज्जावान ही होंगे।
39. दूसरे लोग अनपत्रपी (उचित भय को न मानने वाले) होंगे परंतु हम अपत्रपी ही होंगे, यह तप है।
40. दूसरे लोग अल्पश्रुत होंगे परंतु हम बहुश्रुत ही रहेंगे।
41. दूसरे लोग कुसीद अनुद्योगी (आलसी) होंगे परंतु हम उद्योगी ही होंगे।
42. दूसरे लोग मूढ़ स्मृति वाले होंगे परंतु हम उपस्थित स्मृति वाले ही होंगे।
43. दूसरे लोग दुष्प्रज्ञ होंगे परंतु हम स्थितप्रज्ञ ही होंगे, यह तप है।
44. दूसरे लोग आधानग्राही (हठी) होंगे परंतु हम सरल ही रहेंगे।
45. दूसरे लोग दुष्प्रतिनिस्सर्गी होंगे परंतु हम सुप्रतिनिस्सर्गी ही रहेंगे, यह तप है। आर्य धर्म में इसे ही तप कहा गया है न कि ध्यान और चिंतन को। ध्यान और चिंतन को दृष्ट धर्म सुखविहार कहते हैं।

चुंद जैसे प्रत्येक विषम और जटिल दुरूह मार्ग का एक सरल मार्ग भी होता है वैसे जैसा मैंने यह दूसरा सरल मार्ग बताया है। हिंसक होने का सरल मार्ग है अहिंसक होना। झूठ बोलने का सरल मार्ग है सत्य बोलना इत्यादि। चुंद जो भी अकुशल मार्ग हैं वह अधोगति को पहुँचाने वाले हैं और इसके विपरीत कुशल मार्ग उपरिभाव अर्थात उन्नति को पहुँचाने वाले हैं जैसे हिंसा व्यक्ति को अधोगति को पहुँचाती है। अहिंसा उपरिभाव अर्थात उन्नति को पहुँचाती हैं। वैसे ही जिन तथ्यों की विवेचना अभी की गई है। वह क्रमश: विषम मार्ग व सरल मार्ग हैं और क्रमश: अधोगति और उन्नति को पहुँचाने वाले हैं।

चुंद! जो व्यक्ति स्वयं गिरा हुआ है, वह दूसरे गिरे हुए को उठाएगा यह सम्भव नहीं है किंतु जो स्वयं गिरा हुआ नहीं है वह दूसरे को उठाएगा, यह सम्भव है। जो स्वयं अविनीत है वह दूसरे को विनीत बनाएगा यह सम्भव नहीं है परंतु जो विनीत है, प्रशिक्षित है, वह दूसरे को विनीत बनाएगा, प्रशिक्षित करेगा, यह सम्भव है। अत: भिक्षुओ प्रमाद मत करो यह सूने घर हैं, यह वृक्षमूल हैं, विपस्सना की साधना करो। ऐसा न हो कि पीछे पश्चाताप करना पड़े। यह हमारा अनुशासन है।

भगवान से सतुष्ट हो चुंद और समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने भगवान का अभिनंदन किया।

*****

10. सम्यक् दृष्टि सूत्र

मूल बुद्धवचन का यह अंश अष्टांग मार्ग के सर्वप्रधान अंग सम्यक् दृष्टि से सम्बंधित है। इसमें भगवान बुद्ध के आदेश पर उनके प्रधान शिष्य शारिपुत्र के द्वारा उनके सम्मुख सम्यक दृष्टि की विषद व्याख्या की गयी है।

ऐसा मैंने सुना–

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन वहाँ गुरुकुल के बहुत से शिष्य मिलने आए। उस शिष्यों ने आयुष्मान शारिपुत्र के बारे में बहुत कुछ सुन रख था। उनके अंदर यह जिज्ञासा उठी थी कि भगवान बुद्ध अक्सर सम्यक् दृष्टि की बात करते हैं। आखिर यह सम्यक् दृष्टि क्या है यह स्वयं भगवान से ही पूछते हैं। उस समय आयुष्मान शारिपुत्र भगवान के पास ही बैठे थे, अतः भगवान बुद्ध ने कहा–

'आयुष्मान शारिपुत्र! आप सम्यक् दृष्टि सूत्र मे अच्छी तरह पारंगत हैं, अच्छा हो कि आप ही इन शिष्यों को सम्यक् दृष्टि का वाचन करें। इससे जहाँ आपकी परीक्षा हो जाएगी और आपकी सभा पर नियंत्रण की योग्यता भी पुष्ट हो जाएगी।' भगवान से आज्ञा पाकर आयुष्मान शारिपुत्र ने कहा–

'आयुष्मानों! जब व्यक्ति अकुशल एवं अकुशल मूल को जनता है तथा कुशल और कुशल मूल को जानता है तो उसकी दृष्टि सम्यक् अर्थात सीधी होती है। अब यह जान लेना आवश्यक है कि अकुशल और कुशल क्या है?

आयुष्मानों! प्राणि हिंसा, मृषावाद अर्थात झूठ बोलना, अदात्तदान अर्थात चोरी, पिशुनवचन अर्थात चुगली, परुषवचन अर्थात कटुवचन, अभिध्या अर्थात लालच, व्यापाद अर्थात प्रतिहिंसा या बदला, संप्रलाप या बकवास करना अकुशल है। इनका मूल अर्थात कारण क्या है? इन अकुशल का कारण है–

लोभ या लालच, द्वेष या दूसरों की उन्नति से जलन या वैर भाव और मोह अर्थात अपनों के प्रति अत्यधिक आसक्ति। इन्हीं के कारण यह अकुशल उत्पनन्न होते हैं।

इसके विपरीत अहिंसा, सत्य वचन, चोरी न करना, क्षमा अर्थात प्रति हिंसा से बचना, मीठा व कर्ण प्रिय वचन बोलना, संतोष, चुगली या पिशुनवचन से विरत रहना, कम बोलना कुशल है। इसका कारण या उत्पत्ति है संतोष या लालच से बचे रहना, सभी से प्रेम अर्थात अद्वेश और अमोह अर्थात प्रिय जनों से अत्यधिक लगाव से बचना कुशल धर्म हैं।

आयुष्मानों! कुशल कार्यों और अकुशल कार्यों के बारे में अच्छी तरह से जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए कि जब हम जानेंगे तभी तो मानेंगे। अगर हमें जानकारी ही नहीं होगी तो इन्हें मानेंगे कैसे? इस प्रकार कुशल और अकुशल की जानकारी

होने से व उसके कारणों की जानकारी होने से व्यक्ति की दृष्टि ठीक और सीधी होती है। परंतु सम्यक् दृष्टि होने के लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त जो प्रत्यय है उनको बताता हूँ।

व्यक्ति को आहार कुशल होना चाहिए। आहार तीन तरह का होता है, प्रथम मुख से ग्रहण किया जाने वाला आहार जिससे पेट की भूख शांत होती है, दूसरा स्पर्श या प्राप्त करने का भाव और तीसरा मन का संतोष या असंतोष। व्यक्ति को आहार कुशल होना चाहिए, उसे केवल उतना ही आहार लेना चाहिए जितना शरीर तथा मन की रक्षा व परिष्कार के लिए आवश्यक और पर्याप्त हो। न अधिक हो न कम। उक्त तीनों तरह के आहारों की कमी या अधिकता हानिप्रद होती है।

आयुष्मानों ! सम्यक् दृष्टि सभी मार्गों में अग्रगामी होती है। सम्यक् दृष्टि को जानने के लिए व्यक्ति को यह भी जानना चाहिए कि दु:ख क्या है? और उसका कारण क्या है? और उसका निवारण क्या है? निश्चित रूप से अगर हमें कारण का पता चल जाए तो उस कारण की रोकथाम कर दी जाए तो दु:खों पर रोक लग सकती है। जीवन में दु:ख तब उत्पन्न होता है जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की कामना होती है और वह वस्तु नहीं प्राप्त होती है, तो कष्ट होता है और दु:ख उत्पन्न होता है अर्थात दु:ख की उत्पति तो स्वयं इसके कारण अर्थात कामना इच्छा या तृष्णा में ही निहित है। यदि हम तृष्णा पर नियंत्रण कर लें तो दु:ख उत्पन्न ही नहीं होगा।

'अब तृष्णा कहाँ से उत्पन्न होती है। तृष्णा की उत्पत्ति इन छह कार्यों से होती है- रूप, गंध, शब्द, रस, स्पर्श और मन। इन छह कार्यों से सम्बंधित छह अंग हैं- क्रमश: आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा और मस्तिष्क। आँख और रूप के मिलन से होने वाला एहसास, घ्राण पिंड और सुगंध के मिश्रण का एहसास, कर्ण से मधुर शब्दों का एहसास, जिह्वा से स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों का एहसास, त्वचा और स्पर्श का एहसास तथा मस्तिष्क और मन को प्रिय कर्म का एहसास सबसे पहले संचेतना उत्पन्न करता है। 'इस संचेतना का संजानन विज्ञान कहलाता है। इन्हीं का अतिशय उपभोग ही दुख का कारण होता है। इनका उतना ही उपयोग जितना शरीर और मन के लिए आवश्यक और शेष का परित्याग सम्यक् दृष्टि का मूल है। इन से होने वाले सुखों या दु:खों को देखते हुए इनका केवल उतना ही उपयोग जितना कि शरीर, मन, घर-परिवार और समाज के लिए आवश्यक हो, दु:खों के विनाश का मूल है और सम्यक् दृष्टि का द्वार है।'

आयुष्मान शारिपुत्र का सम्बोधन सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा-

'आयुष्मानों! इस सूत्र को ऐसे ही धारण करो, यदि इसका विवेचन मैं भी करता तो ऐसे ही करता।'

समस्त आगंतुक माणवों (अंतेवासी शिष्यों) ने कहा-

'आश्चर्य भंते! अद्भुत!! ऐसा भाषण कभी पहले नही सुना न समझा, जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे नेत्रहीन को दुनिया दिखा दे, वैसे ही आज हमारी आँखे खुल गई। आज से हमें अपना अंजलिबद्ध उपासक व शिष्य मानें।' यह कहकर उन्होंने भगवान की प्रदक्षिणा की और वापस चले गए।

*****

11. स्मृति प्रस्थान सूत्र

(सतिपट्ठान व आनापान सति)

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत अमृतवाणी के इस अंश को आज हम विपस्सना (विपश्यना) के नाम से जानते हैं। इस सूत्र में भगवान के द्वारा विपस्सना के विस्तृत स्वरूप को समझाया गया हैं। वास्तव में विपस्सना, स्मृति प्रस्थान का एक हिस्सा है। इस सूत्र में चारों स्मृति प्रस्थानों का विस्तृत विवेचना किया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक बार भगवान बुद्ध कुरूओं के निगम कम्मसदम्म में विहार कर रहे थे। इसी समय उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! आप लोगों के स्मरण के लिए मैं स्मृति प्रस्थान का विवेचना करता हूँ। यह शोक और कष्ट के निवारण के लिए, दु:ख और दोर्मनस्य दूर करने के लिए अब तक का सबसे बड़ा अनुसंधान हैं। इस प्रक्रिया में भिक्षु अरण्य, वृक्ष मूल या शून्यागार में काया को सीधा कर आसन मार कर बैठता है। स्मरण रखते हुए श्वास (सहज सांस) लेता है। स्मरण रखते हुए श्वाँस (सहज सांस) छोड़ता है। श्वाँस-प्रश्वाँस के स्थिर होने के पश्चात अपने चित्त को एकाग्र करता है। चित्त के एकाग्र होने के पश्चात धीरे-धीरे क्रमशः वह शरीर के सभी अंगों को आँख बंद कर ध्यान करते हुए देखना प्रारम्भ करता है। क्रमशः पैर के तलवे से शुरू करते हुए पैर का निचला हिस्सा क्रमशः पैर का ऊपर का हिस्सा, पेट, बड़ी आंत, छोटी आंत, वृक्क, प्लीहा, यकृत, फुफ्फुस, हृदय, अस्थि, मांस, रक्त, स्नायु, चमड़ा, आँसू, वसा, लार, नासामल, पीब, पसीना आदि शरीर के समस्त सम्भव व ज्ञात अंग-प्रत्यंगों का ध्यान लगाकर उसकी सुंदरता, कुरूपता और निःसारता पर ध्यान लगाता है। जैसे कोई भिक्षु अनाजों से भरी पोटली को खोल कर देखे कि यह गेहूँ है, यह चावल है, यह उरद है, यह मूँग है, यह तिल है, यह मक्का है, यह सरसों हैं। इस प्रकार शरीर के समस्त अंगों को देखे जिससे शरीर - की सच्चाई का पता चल जाए। प्रारम्भ में किस प्रकार यह सारे अवयव अच्छी प्रकार कार्य करते हैं। और क्रमशः धीरे-धीरे उम्र और समय के साथ-साथ इनकी क्रियाशीलता घटने लगती हैं। उम्र और समय के साथ-साथ यह सारे अंग शिथिल पड़ने लगते हैं। एक समय ऐसा आता है कि अंग शिथिल पड़ते-पड़ते काम करना बंद करने लगते हैं। हृदय की धड़कन कम होते हुए एक दिन बंद हो जाती है तो उस समय सारे अंग बेकार हो जाते हैं। शरीर मृत हो जाता हैं। श्मशान में फेंका हुआ। जलाया जाता हुआ देखता हैं। यह शरीर जो कभी इतना सुंदर था, एक समय पर फेंका हुआ और जलाकर नष्ट किया जाता है। एक दिन का मृत, दो दिन का मृत, तीन दिन का मृत शरीर देखा जाता है इससे भी आगे बढ़कर विभिन्न प्रकार के जीवों के द्वारा शरीर को नष्ट किया जाता देखे और इन सबको अपने ऊपर अवधारित करें, कि आगे आने वाले समय में उसके साथ भी ऐसा ही होने वाला है। यह प्रथम स्मृति प्रस्थान है जिसे कायानुपश्यना कहते हैं।

भिक्षुओ ! इससे आगे बढ़ते हुए वेदनाओं अर्थात सुखद – दु:खद वेदनाओं का अनुभव अपने शरीर पर करे। अच्छा वातावरण होने पर शरीर को सुख का अनुभव होता है, वातावरण खराब होने पर कष्ट होता है। जन्म के समय कष्ट होता है, रोग के समय कष्ट होता है। मृत्यु के समय महान कष्ट होता है। इन सुखों और कष्टों का अनुभव करता है। यह द्वितीय स्मृति प्रस्थान है जिसे वेदनानुपस्सना कहते हैं।

इस क्रम में आगे विचार करते हुए लोभ, मोह, क्रोध, द्वेष, मार्श, पण्गुता आदि का अनुभव करे कि किस प्रकार चाहे अनचाहे यह सब तत्व मन को व्यथित करते हैं। इन सारी मनोभावनाओं का स्मरण कर और अपने ऊपर अवधारित करे, अनुभव करे कि इसके होने से क्या अनुभूति होती है। निश्चित रूप से बहुत ही अप्रिय अनुभूति होती है। इसमें पारंगत होने के पश्चात भिक्षु धर्म के अवयवों का अनुभव करे। यह अनुभव करे कि धर्म के पाँचों नीवरण स्कंध रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान किस तरह उत्पन्न होते हैं और किस तरह जरा-मरण के चक्र को पूरा करते हैं। इनकी उत्पत्ति और अस्तगमन कैसे होता है। छहों इंद्रियों- आँख, नाक, जिह्वा, कान त्वचा व मन और इनके विजानन अर्थात विज्ञान से उत्पन्न सुख और दु:ख का अनुभव करता है। इसे चित्तानुपश्यना कहते है। इससे आगे बढ़ते हुए इन कष्टों/दुखों के निवारण के लिए चार आर्य सत्य का अनुभव करता है। यह अनुभव करता है कि यदि जीवन में कहीं दु:ख है तो निश्चित रूप से उस दु:ख का कारण होगा। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता यदि दु:ख का कारण है तो इसका निवारण भी होगा। इसका निवारण है मध्यम मार्ग या अष्टांग मार्ग, अष्टांग मार्ग के सारे अवयवों, सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्मांत, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि का ध्यान करता है। यह धम्मानुपश्यना कहलाता है।

भिक्षुओ ! कैसे आनापानसति से चारों स्मृति प्रस्थान परिपूर्ण होते हैं और जब भिक्षुओ हम आनापानसति के बाद अर्न्तमुखी होकर अपनी काया के सारे अंगों को क्रमश: देखते हैं और यह भी देखते या महसूस करते हैं कि आगे आने वाले समय में किस तरह से हमारे शरीर के सभी अंग किस प्रकार दुर्गति को प्राप्त होने वाले हैं, इसका ध्यान करता है तो यह विपस्सना का प्रथम चरण पूरा करता है। इसे प्रथम स्मृति प्रस्थान या कायानुपस्सना कहते हैं। जब भिक्षु कायानुपस्सना से आगे बढ़कर शरीर पर आने वाली वेदनाओं अर्थात सुख वेदना और दु:ख वेदना का अनुभव करता है तो वह द्वितीय स्मृति प्रस्थान की स्थिति अर्थात वेदनानुपस्सना पूर्ण कर लेता है। इससे आगे बढ़ते हुए जब वह मन की अवस्थाओं, मनोभावों को पढ़ते हुए उनको अपने ऊपर प्रयोग करता है तो यहाँ तृतीय स्मृति प्रस्थान पूर्ण होता है जो चित्तानुपस्सना कहा जाता है। चित्तानुपस्सना की कला में भली-भाँति प्रवीण हो जाने के बाद साधना की अगली अवस्था में जब भिक्षु धर्म के अंगों अर्थात कार्य कारण सिद्धांत पर विचार करता है और यह विचार करता है कि यदि जीवन में दु:ख उपस्थित हैं तो निश्चित रूप से उसका कारण होगा, दु:ख उत्पन्न होने के कारणों पर विचार करता है। वह यह पाता है कि दु:खों के कारण तो स्वय दु:ख में ही मौजूद हैं और तद्नुसार उसके निवारणों के लिए अष्टांग मार्ग का चिंतन करते हुए परिपूर्णता प्राप्त करता है तो यहाँ वह चतुर्थ स्मृति प्रस्थान को प्राप्त करता है जिसे धमार्नुपश्यना कहते हैं। इस प्रकार की भावना करने से चारों स्मृति प्रस्थान पूर्ण होते हैं।'

भगवान बुद्ध के इस अमृतरूपी भाषण का पान कर संघ के सभी उपस्थित भिक्षुओ ने भगवान के भाषण का हर्ष ध्वनि से अभिनंदन किया।

*****

12. सामगाम सूत्र

यह भगवान बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत सबसे महत्त्वपूर्ण उपदेशों में से एक है। इस उपदेश में उन्होंने संघ में विवादों को शांत कराने के तरीके बताए हैं और यह भी बताया गया है कि आपस में विवाद न उत्पन्न हों, इसके लिए क्या विशेष उपाय करना चाहिए या सावधानियाँ रखनी चाहिए।

ऐसा मैंने सुना-

एक बार भगवान बुद्ध शाक्य जनपद के सामगाम नामक ग्राम में विहार करते थे। यह उस समय की बात है जब भगवान महावीर की अभी हाल में ही मृत्यु पावा में हुई थी और उसके बाद उनके संघ में फूट पड़ गई थी उनके शिष्य आपस में ही लड़-भिड़ रहे थे। संघ में अत्यंत कलहपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई थी। निगंठ – नाथपुत्र के श्रावक भी इसी प्रकार कई भागों में विभक्त होकर आपस में कलहपूर्ण माहौल को ही हवा दे रहे थे और उसी आपसी विवाद में शामिल थे। ऐसी स्थिति की जानकारी भगवान बुद्ध के शिष्यों को हुई तो उन्हें बड़ी चिंता हुई कि कहीं ऐसा ही उनके साथ भी न हो। इससे आशंकित हो आयुष्मान आनंद और आयुष्मान चुंद और समनुदेश्य भगवान के पास गए और अपनी शंका उनके सम्मुख रखी। उनकी शंका सुनकर भगवान ने पूछा-

'क्या मानते हो आनंद! मैंने जिन धर्मों का उपदेश दिया है जैसे चार स्मृति प्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इंद्रिय, पाँच बल, सात बोध्यंग, आठ अंग वाला अष्टांग मार्ग क्या इनमें कोई अनेक मत दिखता है?'

'भगवान्! आपने जो उपदेश दिया हैं उनमें तो कोई अनेक मत नहीं दिखता परंतु भिक्षुओं को आजीविका के बारे में जो प्रतिमोक्ष बताए गए हैं उनमें विवाद हो सकता है।'

'आनंद! यह जो प्रतिमोक्ष के विवाद हैं वह थोड़े हैं, अल्पमात्रक हैं। इनके बारे में यदि भविष्य में विवाद होता है तो इसके छह कारण या मूल होंगे।'

1. भिक्षु क्रोधी होंगे
2. भिक्षु मृषी व आलसी होंगे
3. भिक्षु ईर्ष्यालु होंगे
4. भिक्षु शठ या मायावी होंगे
5. भिक्षु बदनीयत होंगे
6. भिक्षु दृष्टि परामर्शी होंगे

7. आधान-ग्राही और जान-बूझकर झगड़ा करने वाले होंगे।

ऐसे भिक्षुओ से बचने का प्रयास करना चाहिए और ऐसे तत्त्व जब भी संघ में किन्हीं कारणों से प्रविष्ट हो जाएँ तो समय-समय पर सन्निपातों (बैठकों) में इनका निराकरण करते रहना चाहिए नहीं तो यही कलह के कारण बनते हैं। इन विवादों को शमन करने के चार अधिकरण हैं:-

1. विवाद अधिकरण
2. अनुवाद - अधिकरण
3. आपत्ति - अधिकरण
4. कृत्य - अधिकरण

इनके माध्यम से विवादों का शमन करते रहना चाहिए। आनंद ये सात अधिकरण शमथ हैं जिनका उपयोग समय-समय पर करना चाहिए

1. सन्मुख - विनय
2. स्मृति - विनय
3. अ-मूढ़ - विनय
4. प्रतिज्ञात - करण
5. यद्‌भूयसिक
6. तत्पापीयसिका और
7. तिणवत्थारका।

सम्मुख विनय में सभी भिक्षुओ को एक जगह एकत्र होना चाहिए। आपस में सलाह कर अधिकरण (झगड़े) पर चर्चा करनी चाहिए। यदि दोषी व्यक्ति सभी के सम्मुख अपना दोष मान लेता है तो उस अधिकरण को वहीं समाप्त कर देना चाहिए और ऐसे मामले में इस तरह के न्याय को सम्मुख विनय कहते हैं।

जब ऐसे अधिकरणों में आरोपी व्यक्ति भिक्षु यह कहता है कि उसे याद नहीं है या स्मृति नहीं है कि उसके द्वारा कब इस तरह की आपत्ति या कृत्य किया गया था। उसका यह कहना एक तरह से उसके द्वारा यह स्वीकार करना होता है कि यह कृत्य गलत है और ठीक नहीं है। अत: ऐसे मामलों में आरोपी को स्मृति विनय देकर विवाद समाप्त करना चाहिए।

जब भिक्खु या कोई व्यक्ति जो आरोपित होता है और यह कहता है कि मुझे स्मृति नहीं है या मैं पागल हो गया था। मुझे स्वयं पता नहीं कि किस तरह से ऐसा कृत्य मुझसे हो गया? या यह मेरा पागलपन था, बेहोशी में ऐसा कृत्य हो गया। होशो हवास में ऐसा नहीं हो सकता है। ऐसे में उसका यह कहना उसके प्रायश्चित का कथन होता है। अत: उसे माफ कर दिया जाना चाहिए और इसे अमूढ़ विनय कहते हैं।

ऐसे प्रकरण जिनमें आरोपी भिक्षु या व्यक्ति अपने ऊपर लगे आरोपों को सही बताता है। स्वयं स्वीकार करता है और यह कहता है कि ऐसा दोबारा नहीं करेंगे। यदि मुझसे

दोबारा यह आपत्ति हो जाए तो संघ मुझे सजा दे। तो ऐसे प्रकरण में आरोपी को प्रतिज्ञात कारण देकर मुक्त किया जा सकता है।

यदि अधिकरण छोटे संघ में शांत न हो सके तो उसे बड़े वास या मठ में ले जाते हैं और वहाँ उसका निस्तारण करते हैं तो उसे यद्‌भूयसिक कहते हैं।

जब आरोपी आसानी से सही बात नहीं कहता। बार-बार झूठ बोलता है। तमाम तरह के बहाने बनाता है और तरह-तरह की उपमाएँ देते हुए आपत्ति के याद होने से इनकार करता है। उत्तर देने की बजाए गलत और आपत्तिजनक उत्तर देता है। ऐसे अधिकरण को तत्यापीयसिका (तस्यापीयसिका) कहते हैं। यह बड़ी आपत्ति होती है और कभी-कभी भिक्षुओ! जब कलह तेज होती है और श्रमण कलह से पीड़ित हो एक-दूसरे को व्यथित करते, अपमानित करते रहते हैं। यह प्रकिया लम्बे समय तक चलते रहने के कारण इसमें कोई भी बचा नहीं रहता और सभी ने नियमों को उल्लंघन किया होता है तो ऐसी दशा में सभी के कुकर्मों को समाप्त करने, निवारित करने की प्रक्रिया तिणवत्थारक अर्थात घास या तृण से ढकना कही जाती है।

आनंद! यह छह सारणीय धर्म हैं जो प्रियकारक हैं, संघ के एकता या एकीभाव के लिए हैं।

संतुष्ट हो आयुष्मान आनंद एवं अन्य उपस्थित ब्राह्मणों श्रमणों ने भगवान के सम्भाषण का अभिनंदन किया।

*****

13. उपालि सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध और जैन भगवान महावीर जिन्हें तत्समय निग्रंथ नाथ पुत्र कहा जाता था से अप्रत्यक्ष वार्तालाप का प्रकरण उद्धृत किया गया है। आयुष्मान उपालि तत्समय जैन मुनि के प्रभाव में थे। इसी प्रकरण के उपरांत जैन धर्म छोड़कर वह भगवान बुद्ध के शिष्य बन गए।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध नालंदा में प्रवारिक के आम्बवन मे विहार करते थे। उसी समय वहाँ नालंदा मे ही जैन धर्म के संस्थापक निगंठ नाथ पुत्र, निगंठों की एक बड़ी परिषद के साथ विहार करते थे। एक दिन निगंठों / जैनों की परिषद के एक बड़े (दीर्घ) तपस्वी भगवान से मिलने आए। यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के पश्चात भगवान बुद्ध ने ही दीर्घ तपस्वी से पूछा–

'तपस्वी ! पाप कर्म करने के लिए अथवा पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए निगंठनात पुत्र कितने कर्मों का विधान करते हैं?'

'आयुष्मान गौतम ! कर्म का विधान करना निगंठ नाथ पुत्र का नियम नहीं है दंड का विधान करना निगंठ नात पुत्र का नियम है।'

'तपस्वी ! इस प्रकार पाप कर्म या पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए निगंठ कितने प्रकार के दंड का विधान करते हैं।'

आयुष्मान गौतम ! निगंठ पाप कर्म या पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए तीन दंड का विधान करते हैं–

1. शारीरिक दंड,
2. वचन दंड और
3. मन दंड

'तपस्वी ! यह मन दंड, वचन दंड और शरीरिक दंड क्या अलग–अलग हैं?'

'हाँ भंते ! यह मन दंड, वचन दंड और काय दंड अलग अलग हैं।'

'तपस्वी ! इन तीनों ही दंडों मे निगंठ किस दंड को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं या पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए सबसे बड़ा दंड कौन – सा दंड है?'

'भंते ! इन सब दंडों मे काय दंड अर्थात शारीरिक दंड सबसे महत्वपूर्ण है।'

'तपस्वी ! कृपया ध्यान देकर जवाब दें, यदि आपको कोई शंका हो तो निग्रंथ से वार्ता कर लें कि आप इन तीनों दंडों में से किसको सबसे अधिक महत्व देते हैं।'

'भंते ! मुझे अच्छी तरह पता है मेरे शास्ता इन तीनों ही दंडों में सबसे अधिक महत्व

शारीरिक दंड को ही देते है?'

भगवान बुद्ध ने तपस्वी को इस प्रकार अच्छी तरह से कथावस्तु में स्थापित किया ताकि आगे उसे अपनी बात से पलटने का कोई रास्ता न रहे। ऐसे में दीर्घ तपस्वी ने भगवान बुद्ध से पूछा-

'भंते! पाप कर्म या पाप कर्म की प्रवृत्ति के लिए आप किस दंड का विधान करते हैं।'

'तपस्वी! दंड का विधान करना मेरा नियम नहीं है बल्कि कर्म का विधान मैं करता हूँ।'

'भंते! पापकर्म या पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए आप कितने कर्म का विधान करते हैं।'

'तपस्वी! पापकर्म या पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए मैं तीन कर्मों को दोषी मानता हूँ-

1. मन कर्म
2. वचन कर्म और
3. शारीरिक कर्म अर्थात काय कर्म

'भंते! इन तीनों कर्मों में से आप किस कर्म को सबसे अधिक दोषी मानते हैं।'

'तपस्वी! मैं इन तीनों कर्मों में से मन कर्म को सबसे अधिक उत्तरदाई मानता हूँ।'

'भंते! क्या आप सत्य कह रहे हैं कि पापकर्म या पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए आप मन कर्म को सबसे अधिक उत्तरदायी मानते हैं?'

'हाँ तपस्वी! मैं यह सही कह रहा हूँ कि पापकर्म या पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए मन कर्म को सबसे अधिक उत्तरदायी मानता हूँ।'

इस प्रकार दीर्घ तपस्वी ने भगवान को कथा वस्तु में प्रतिष्ठित किया और उसके उपरांत वापस निग्रंथ के पास चला आया, दीर्घ तपस्वी की सारी बातें सुनकर निग्रंथ ने कहा कि गृहपति! तुमने बिल्कुल सही कहा कि पाप कर्म या पापकर्म की प्रवृत्ति के लिए यह मुआ मन दंड, काय दंड के सामने क्या-क्या हैसियत रखता है? शारीरिक दंड के सामने मन कर्म दूर-दूर तक नहीं ठहरता। उस समय गृहपति उपालि वहीं बैठे हुए थे, निग्रंथ के बोलने से पहले ही उपालि बोले-

'अब जबकि आपके सबसे वरिष्ठ और विद्वान दीर्घ तपस्वी ने गौतम को इस काय दंड में स्थापित कर लिया है तो यदि आपकी अनुमति हो तो मैं जाऊँ और गौतम के साथ वाद-विवाद करूँ। इस बात का प्रतिरोध करते हुए दीर्घ तपस्वी ने कहा। गौतम अनुवर्तिनी माया को जानता है वह सामने वाले की मति फेर लेता है। मन को अपने वश में कर लेता है। बड़े-बड़े विद्वान एवं तीर्थक उनके सामने टिक नहीं पाते। कहीं ऐसा न हो कि गृहपति उपालि उनका शिष्य हो जाए। अतः बेहतर होगा गौतम के साथ आप विवाद करें।'

'गौतम के साथ मैं वाद-विवाद करूँ या गृहपति उपालि विवाद करे एक ही बात हुई। इसकी सम्भावना नहीं है कि गृहपति उपालि उसके शिष्य बन जाएँ, बल्कि यह हो सकता है कि गौतम ही उपालि का शिष्य बन जाए। यह इतना बड़ा प्रश्न नहीं है कि मुझे वाद-विवाद के लिए स्वयं जाना पड़े। इस सरल से विवाद के लिए उपालि ही पर्याप्त है।

अपने शास्ता निग्रंथ नाथ पुत्र से अनुमति लेकर गृहपति उपालि भगवान बुद्ध से शास्त्रार्थ करने भगवान के पास पहुँच गए।

भगवान के साथ यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के उपरांत दीर्घ तपस्वी के साथ जो वार्ता हुई थी उसके बारे में उपालि ने भगवान से पृच्छा की। प्रत्युत्तर में भगवान बुद्ध ने सारा प्रकरण बताया और जो वार्ता हुई थी उसे कह सुनाया। समस्त प्रकरण सुनकर उपालि ने कहा-

'साधु भंते! साधु आपने बिल्कुल सही कहा कि इस प्रकार शारीरिक कर्म और शारीरिक दंड के सामने मन कर्म क्या शोभता है मन कर्म की क्या ताकत है जो कार्य दंड के सामने ठहरेगा?

गृहपति यदि आप अपने कहे के अनुसार, अपनी बात पर अडिग रहें तो आपसे कुछ कथा संलाप हो।'

'भंते! मैं सत्य में स्थिर हो वार्ता करूँगा, हमारा कथा संलाप हो।'

'गृहपति! यदि एक बीमार व्यक्ति पानी न मिलने से मर जाए तो निग्रंथ उसकी उत्पत्ति कहाँ बताते हैं?'

'भंते! मनोसत्व नामक देवता के वास में चूंकि वह मन से बंधा हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ है।'

'गृहपति! कृपया सोचकर उत्तर दें आपका पहले का कहा हुआ बाद से नहीं मिलता।'

'भंते! आपने कहा भी है कि मन कर्म सबसे महत्वपूर्ण है।'

'गृहपति! आपके शास्ता निग्रंथ जीव क्षति को बहुत महत्व देते हैं। आते-जाते, खाते आदि कार्यों को करते समय यदि भिक्षु के द्वारा जीवों की क्षति हो जाती है तो आपके शास्ता के द्वारा उसके लिए भिक्षु को क्या दंड विहित किया गया है?'

'भंते! यदि जान-बूझकर वह ऐसा करता है तो वह जिम्मेदार है और उसके लिए कठोर दुष्कर चर्या प्राविधानित है, जिसको हम बीच-बीच में करते रहते हैं। और इसी दुष्कर शरीर पीड़ा से ऐसे जाने-अनजाने मे हुए पापों का शमन करते रहते हैं। यदि यह अपराध अनजाने में होता है तो उस क्षति या उस पाप के लिए वह उत्तरदायी नहीं है।'

'गृहपति! तो इसमें सबसे महत्तापूर्ण क्या हुआ मन कर्म या काय कर्म?'

'गृहपति! मान लो कि कोई आदमी तलवार लेकर आए और कहे कि मैं समूची नालंदा को अकेले मार काट कर खलिहान कर सकता हूँ तो क्या मानते हो वह ऐसा कर सकता है।'

'भंते! एक व्यक्ति क्या 10, 20, 100 या 1000 व्यक्ति भी ऐसा नहीं कर सकते एक मुआ की क्या औकात है?'

'गृहपति! ऐसे में काय कर्म और वचन कर्म की क्या स्थिति है?'

'और भगवान! आपने कहा भी है कि मन कर्म सबसे महत्वपूर्ण है।'

'गृहपति! आप चुप हैं!'

'भगवान! मैं आपकी पहली उपमा से ही अभिरत हो गया था शेष तो आपके मुखारविंद से अनमोल वचन सुनना चाहता था। आश्चर्य भंते! अद्भुत!! जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, अंधे को रास्ता दिखा दे वैसे ही भगवान आज आपने मेरी आँखें खोल दीं।

भगवान आज से मुझे अपना अंजलिबद्ध उपासक जाने।'

'गृहपति! अच्छी प्रकार सोच-विचार कर लें, कहीं ऐसा न हो कि बाद में पछताना पड़े, जल्दबाजी मे लिया गया फैसला ठीक नहीं होता।'

'भगवान! आपकी इस बात से मैं और भी सम्मोहित हुआ जहाँ लोग किसी तरह उपासकों को अपने पक्ष में करते हैं और उच्च स्वर में घोषणा करते हैं कि उपालि हमारा श्रावक हुआ और आप कहते है कि भली प्रकार सोच समझ लें। भगवान मुझे आज से अपना शरणागत मानें।

'गृहपति बहुत समय से आपका घर निग्रंथों के लिए आश्रय स्थल रहा है उन्हें आपके यहाँ से बहुत लम्बे समय से भिक्षादि प्राप्त होती रही है। अत: मेरे प्रभाव में आकर अपने घर के द्वार उनके लिए बंद मत करना।'

'अद्‌भुत! भगवान आश्चर्य!! अब तक के सभी पंथाई मेरे उनकी सभा में जाने मात्र से ही पूरी नालंदा मे पताका लेकर दौड़ते हैं कि गृहपति उपालि हमारा श्रावक हो गया और भगवान आप कहते हैं अपने घर के द्वार निग्रंथ के लिए बंद मत करना। अद्‌भुत भंते! अद्‌भुत!! आपको बारम्बार नमस्कार है। मैंने इसके पहले सुना था कि गौतम ऐसा कहते हैं कि केवल मुझे ही दान देने का फल मिलता है और मेरे शिष्यों को ही दान देना फलदायी होता है। अन्य भिक्षुओं तथा पंथियों को भिक्षा नहीं देनी चाहिए परंतु आप तो अपने विरोधियों को भी मान सम्मान देने को कहते हैं। मुझे आज से अपने पूरे परिवार के साथ अंजलिबद्ध उपासक मानें। भगवान अब हमें अनुमति दें।'

भगवान बुद्ध को प्रणाम कर गृहपति उपालि अपने घर पहुँचे और द्वार पालों को निर्देश दिया को अब से यदि कोई निग्रंथ या निगंथनाथ पुत्र आएँ तो उन्हें बाहर ही भिक्षा देकर विदा कर देना और कह देना कि गृहपति उपालि अब भगवान बुद्ध का उपासक हो गया है। और उनके स्थान पर यदि भगवान बुद्ध के भिक्षु भिक्षुणियाँ आए तो उनका भरपूर स्वागत सत्कार करना। दीर्घ तपस्वी ने जब यह सुना उन्होंने निग्रंथनाथपुत्र से कहा कि जैसी शंका थी गृहपति उपालि गौतम का शिष्य हो गया। निगंठनातपुत्त को सहसा विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने कहा-

'यह सम्भव नहीं है। निश्चय ही आप कहीं दुविधा में हैं, ऐसा नहीं हो सकता गृहपति उपालि इतना कमजोर नहीं है, वह मेरा श्रेष्टतम उपासक है। कहीं न कहीं आपको कोई भ्रम हो गया है, अच्छा हो आप स्वयं जाकर इसकी पड़ताल करें फिर मुझे बताएँ। इस तरह आदेश पाकर दीर्घ तपस्वी गृहपति उपालि के घर पहुँचा तो गृहपति ने बाहर से ही कहलवा दिया कि यदि भिक्षा की जरूरत हो तो बैठें, मैं यहीं ला देता हूँ। गृहपति इस समय व्यस्त हैं। इस तरह का प्रत्युत्तर पाकर दीर्घ तपस्वी वापस आए।

सम्पूर्ण वृत्तांत

दीर्घ तपस्वी ने जब यह बात निगठनातपुत्त को बतायी तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ और वह तैयार होकर अपनी परिषद के साथ गृहपति उपालि से मिलने पहुँचे।

गृहपति उपालि को जब यह ज्ञात हुआ कि उनसे मिलने के लिए निगंठनातपुत्त आए हैं तो उनके लिए बरामदे में आसन लगवाया और स्वयं सर्वोच्च आसन पर बैठकर

निगंठनातपुत्त को परिषद के साथ आमंत्रित किया और कहा-

'भंते! आसन मौजूद है यदि इच्छा हो तो बैठें।'

जहाँ पहले निगंठनातपुत्त के आने पर गृहपति आगे दौड़कर उनकी अगवानी करते थे और सर्वोच्च आसन को अपनी अंगवस्तृ से साफ कर बैठाते थे वहाँ इस समय खुद ऊँचा आसन लेकर बैठा है और कह रहा है कि यदि इच्छा हो तो आसन ग्रहण करें। गृहपति उपालि के इस व्यवहार से क्रुद्ध होकर निग्रंथनाथपुत्र बोले-

'उन्मत्त हो गया है गृहपति! गौतम से मिलकर बहुत बड़े जाल संघाट से बंधकर लौट है गौतम ने तेरी मति फेर ली है जैसे किसी आदमी की आँखे निकाल ली जाए और वह अपनी आँखें लिए लिए ही वापस अपने घर आ जाए वैसे ही तू बहुत बड़े जाल संघाट बांध कर लौटा है।'

'भंते! सुंदर है, भंते! अनुवर्तिनी माया उत्तम है, अनुवर्तिनी माया। यदि सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस अनुवर्तिनी माया से फेर लिए जाएँ तो यह उनके दीर्घकाल तक के लिए कल्याणकारी होगा उनके लिए सुखकर होगा।

जैसे पहले से रंगे किसी खिलौने को दोबारा रंगा जाए या पहले से रंगी चादर को किसी दूसरे रंग से रंगा जाए तो उस पर नया रंग अच्छी तरह से नहीं चढ़ता और बिल्कुल नए खिलौने को या नई चादर को चाहे जिस रंग में रंगा जाए वह भली प्रकार रंग जाती है और उसका रंग भली प्रकार खिल कर आता है उसी प्रकार भंते आपका धर्म बाल धर्म है वह केवल मूढ़ों के लिए है एवं मूढ़ों को ही अच्छा लग सकता है किसी बुद्धिमान को नही रुच सकता। गौतम का धर्म इस तरह का है जिसमे ऐसा लगता है कि सभी अच्छी बातें एक माला मे पुष्पों की तरह गूंथ दी गई। उसी प्रकार सुंदर है भगवान की अनुवर्तिनी माया मानो इसमें सभी अच्छाईयों को एक सूत्र में पिरो दिया गया हो। इस प्रकार सुंदर पुष्प रूपी वचनामृतो से अलंकृत है, सुंदर है, भगवान की अनुवर्तिनी माया।'

भगवान बुद्ध की इस तरह की प्रशंसा वह बर्दाश्त नहीं कर सके और उन्होंने मुँह से गर्म खून फेंक दिया। उनके शिष्य उन्हें लाद कर ले गए। कुछ दिनों के उपरांत ही उन्होंने प्राण त्याग दिए।

*****

14. दक्षिणाविभंग सूत्र

भगवान सम्यक् सम्बुद्ध के मुखारविंद से नि:सृत इस उपदेश में भगवान के द्वारा संघ/समूह के सर्वोपरि होने पर जोर दिया गया है। उनके द्वारा यह बताया गया है कि संघ सर्वोपरि है अर्थात जब तक हम एकजुट रहेंगे, हम शक्तिशाली रहेंगे। उनके द्वारा दिया गया यह संदेश आज भी उतना ही प्रभावशाली है। और उनके बाद आने वाले समस्त महापुरुषों के द्वारा इसका समर्थन किया गया। इस सूत्र के माध्यम से भगवान ने स्वयं को भी संघ से नीचे रखकर यह संदेश दिया कि प्रधान निर्णय सामूहिक रुप से ही होने चाहिए। आज भी यही निर्णय लोकतंत्र के रुप में सर्वलोकप्रिय शासन पद्धति हैं।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार कर रहे थे। उसी दिन महाप्रजापति गौतमी एक नए जोड़े थान के उत्तम वस्त्र को लेकर उनके पास गईं और बोलीं कि भगवान यह मेरे द्वारा ही कात; बुना व तैयार किया गया है। यह वस्त्र का जोड़ा आपके उपयोग के लिए है, कृपया स्वीकार करें। ऐसा कहने पर भगवान बोले-

'प्रजापति गौतमी ! इसे संघ को दे दें।'

पुन: गौतमी ने अनुरोध किया। भगवान ने पुन: कहा कि इसे संघ को दे दें। तीसरी बार भी गौतमी ने अनुरोध किया और उस बार भी उन्होंने मना किया। भगवान के ऐसे कहने पर आनंद ने कहा- 'भगवान! महाप्रजापति गौतमी आपकी क्षीरदायिका हैं और वह अत्यंत श्रद्धायुक्त होकर दान करने आई हैं। कृपया उनका दान स्वीकार करने का कष्ट करें।'

'आनंद! तुम बिल्कुल सही कर रहे हो। महाप्रजापति मेरी क्षीरदायिका हैं। यह अत्यंत श्रद्धायुक्त होकर संघ में आई हैं। मैंने इसीलिए उन्हीं से कहा कि इसे संघ को दान करें। संघ मुझसे और समस्त भिक्षुओं से ऊपर है। यह संघ ही निर्णय करेगा कि इस दान का क्या उपयोग किया जाएगा? चूँकि मेरे तीनों चीवर पूरे हैं। अत: मेरे दान लेने का कोई कारण उपस्थित नहीं है। चूँकि संघ व्यक्ति से ऊपर है और उसे निर्णय करने की शक्ति है कि किसी भिक्षु के पास तीन चीवर (वस्त्र) नहीं हैं। उसे यह दिया जाएगा और यदि कोई भिक्षु ऐसा नहीं है जिसके तीनों चीवर पूरे न हों तो संघ की अनुमति से इसे भविष्य के लिए रखा जा सकता है। **चूंकि यह संघ का नियम है कि भिक्षु की व्यक्तिगत सम्पत्ति अत्यंत सीमित है और परिमित हैं। उसे एकत्र करने और परिग्रह करने का अधिकार नहीं है। अत: ऐसी सम्पत्ति जो भी श्रद्धास्वरुप प्राप्त होती है। उस पर संघ का ही अधिकार हो सकता है।** संघ यथावश्यकतानुसार किसी भिक्षु को दे सकता है या किसी सामूहिक कार्य में लगा सकता है। अत: उस दशा में जब भिक्षु के तीनों चीवर पूरे हों तो दान स्वीकार करने का अधिकार केवल संघ को है। यह मात्र संघ का विनिश्चय ही है कि दान में प्राप्त वस्तु को किस कार्य में प्रयुक्त किया जाए। इस प्रकार आनंद ! संघ सबसे ऊपर है।'

भगवान के इस सम्भाषण का समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने हर्ष ध्वनि से अभिनंदन किया।

*****

15. चुल्लमालुंक्य सूत्र

यह भगवान बुद्ध के द्वारा दिए गए क्रांतिकारी उपदेशों में से एक है जिसमें उन्होंने आत्म और आत्मा के बारे में प्रश्नों को अव्याकृत बताते हुए निरस्त किया है और कहा है कि इनका मानव जीवन के दु:खों और मानव कल्याण से कोई वास्ता नहीं है। यदि किन्हीं कारण से इन्हें व्यक्त कर भी दिया गया तो अन्य धर्मों की भाँति भिक्षु भी मिथ्या विश्वास तथा अनावश्यक कल्पना की उड़ान और वाद-विवाद में उलझकर धर्म में मूल उद्देश्यों को ही नष्ट कर देंगे। इसी कारण से उन्होंने अव्यक्त ही रखा।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन उनके एक शिष्य मालुंक्यपुत्र ने भगवान से कहा-

भगवान! मेरे मन में ऐसा विचार बार-बार उठता है कि कतिपय तथ्य आपने अव्याकृत क्यों रखा है? मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि जिन प्रश्नों को आपने अव्याकृत कर रखा है या अकथनीय स्थापित किया है (जिसका उत्तर रोक दिया गया है) और प्रतिक्षिप्त (जिनका उत्तर अस्वीकृत हो गया है) कर रखा है। मैं इन प्रश्नों को आपसे पूछूं और यदि आप उत्तर न दें तो मैं गृहस्थ आश्रम वापस चला जाऊँ। मेरे प्रश्न इस प्रकार हैं-

यह लोक शाश्वत है या नष्ट होने वाला है?

जीव और शरीर एक हैं या पृथक-पृथक हैं?

मृत्यु के बाद शरीर और जीव का क्या होता है? वह कहाँ जाता है?

स्वर्ग और नर्क क्या वास्तव में हैं या नहीं?

जीव और आत्मा क्या अलग-अलग हैं या एक ही हैं?

मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है?

मृत्यु के उपरांत शरीर से क्या बाहर निकलता है, जिससे शरीर निर्जीव हो जाता है?

क्या पुनर्जन्म होता है?

लोक नियंत्रक सत्ता कौन है?

भगवान बुद्ध ने प्रति उत्तर दिया-

'मालुंक्य पुत्र! क्या मैंने तुमसे यह कहा था कि तुम मेरे पास आओ, ब्रह्चर्यवास करो, मैं तुमको यह सब बताऊँगा।'

'नहीं भगवान।'

'यदि मालुंक्य पुत्र! आप में से कोई यह कहता है कि जब तक मुझे इन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिल जाएँगे, तब तक मैं ब्रह्चर्यवास नहीं करूँगा तो वह भिक्षु तो इनके व्याकृत

होने का इंतज़ार करते-करते ही दम तोड़ देगा। जिस प्रकार यदि किसी व्यक्ति को विष बुझा तीर लगा हो और वह बुरी तरह घायल हो। उसके बंधु-बांधव उसे चिकित्सक के पास ले जाएँ। जब शल्य चिकित्सक उसका शल्य (तीर) निकालना चाहे तो वह उसे रोक दे कि पहले मुझे तीर मारने वाले का पता बताओ कि वह कौन है? कैसा दिखता है? उसका रंग-रूप क्या है? वह किस जाति या धर्म का है? किस पंथ को मानने वाला है? उसने मुझे जान-बूझ कर तीर मारा या गलती से लग गया? पहले मैं यह जान लूँ फिर शल्य निकालना। ऐसी दशा में जब तक तीर मारने वाले के विषय में जानकारी जुटाई जाएगी तब तक तो मालुंक्यपुत्र! उसका प्राणांत हो जाएगा। वह तीर उसकी जान ले लेगा।'

मालुंक्यपुत्र! लोक शाश्वत है या नहीं? आत्मा है या नहीं? मृत्यु के बाद व्यक्ति कहाँ जाता है? कहाँ नहीं जाता है? आदि प्रश्नों के जानने से ही क्या ब्रह्मचर्यवास होगा? ऐसा नहीं है, मालुंक्य पुत्र! चाहे लोक शाश्वत हो या नहीं हो, जीव और आत्मा दो हों या एक हों या अनेक हों, स्वर्ग-नर्क हो या नहीं हो, यह विचार होना चाहिए कि जीवन है तो उसमें दु:ख होगा। यदि जीवन में दु:ख है तो निश्चित ही उसका कारण भी होगा। यदि कारण है तो निवारण का उपाय भी होगा। यदि कारण नहीं ज्ञात हो पा रहा है तो समस्या होगी। परंतु यदि कारण ज्ञात हो गया हो तो निश्चित रूप से उसका निवारण भी होगा। यह मैंने जान कर, देख कर बतलाया है। अत: मालुंक्य पुत्र मेरे अव्याकृत को अव्याकृत कारण ही रहने दो। मैंने जान-बूझ कर ही इस अव्याकृत को व्याकृत नहीं किया है। मैं इसका उत्तर दे सकता हूँ और मैंने दिया भी है। सत्काय के बारे में मैंने जो बताया है वही इनका उत्तर है। परंतु इनके व्याकृत होने से मूल प्रश्न जो जीवन में दु:खों की उत्पत्ति उसके निवारण से सम्बंधित है। वह तो अनुत्तरित ही रह जाएगा और सब इसकी कौतुक एवं कौतूहल के सागर में गोते लगाना शुरू कर दोगे और जनजीवन से सम्बंधित प्रश्न फिर वहीं पहुँच जाएँगे जहाँ से बाहर निकालकर मैं इसे सन्मार्ग पर लाना चाहता हूँ। इन सब प्रश्नों से तुम्हारा और समाज को कोई भला नहीं होने वाला है। इसके स्थान पर तुम लोग अनावश्यक बहस और विवाद में उलझकर रह जाओगे। जीवन में दु:ख है और इन दु:खों का कारण है। इन दु:खों का निवारण तथा इसका मार्ग तथा अर्थात दु:ख निरोधगामी प्रतिपदा, मैंने इसे व्याकृत किया है और स्पष्ट किया है। उसे ही व्याकृत के रूप में जानों और जो अव्याकृत किया गया है उसे अव्याकृत के रूप में धारण करो।

भगवान के सम्भाषण से संतुष्ट होकर मालुंक्य पुत्र और समस्त उपस्थित भिक्षुओं के द्वारा भाषण का अभिनंदन किया गया।

*****

16. महापुण्णं सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा अत्यंत जटिल विषय आत्मा का विवेचन किया गया है। इस सूत्र में आत्मा नाम के तथ्य की वास्तविकता से परिचित कराते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि इस धरती पर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। यह केवल भ्रम है और सत्य नहीं है। यह जनसामान्य को मूर्ख बना कर अपना स्वार्थ पूर्ण करने का साधन मात्र है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान श्रावस्ती में मिगारमाता के पुब्बाराम में विहार करते थे। एक समय पूर्णिमा की रात को उपोसथ के बाद भगवान संघ से घिरे बैठे थे। तभी एक भिक्षु ने पूछा–

'भंते! यह जो पाँच स्कंध हैं –

1. रूप
2. वेदना
3. संज्ञा
4. संस्कार व
5. विज्ञान, इनकी उत्पत्ति कैसे और कहाँ से होती है?'

'भिक्षु! यह पाँचों स्कंध राग मूलक हैं अर्थात इनकी उत्पत्ति राग (इच्छा/कामना) से होती है।

'भगवान! यह पाँचों उपादान एक ही में समामेलित हैं या अलग–अलग हैं।'

'भिक्षु! यह पाँचों अलग–अलग नहीं हैं और एक भी नहीं हैं इनके मूल में जो कारण है वह एक ही है।'

'भगवान! क्या इन पाँचों उपादानों के मूल में विभिन्नता हो सकती है।'

'हाँ! हो सकती है जब एक पुरुष यह सोचता है कि भविष्य में मैं ऐसा होकर उत्पन्न होऊँ या यह बनकर उत्पन्न होऊँ। मैं भविष्य में इस वेदना वाला या इस संज्ञा वाला होऊँ, इस विज्ञान वाला होऊँ। इस प्रकार पाँचों स्कंधों के राग में विभिन्नता हो सकती है।

'भंते! यह नित्य आत्मा की अवधारणा (आत्मा) क्या है?'

'भिक्षु! जिन लोगों को सम्यक् रूप से दर्शन का ज्ञान नहीं है। भोले–भाले और सरल लोग (आर्य दर्शन से वंचित) अज्ञ, अनाड़ी व्यक्ति अपने शरीर के हर भाग, शरीर की सुंदरता (रूप) को, वेदना को, संज्ञा को, संस्कार को, आत्मा के रूप में देखते हैं, आत्मा के रूप में ही समझते हैं, इस प्रकार उन्हें आत्मा रूपी अज्ञान उत्पन्न रहता है।'

'भंते! किस प्रकार आत्मा की अवधारणा गलत है और सत्य नहीं है?'

'भिक्षुओ! आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, यह हमारा शरीर और मन ही है जिससे हम सोचते-समझते और अनुभव करते हैं। इस शरीर से पृथक किसी आत्मा जैसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। यदि इस तरह की किसी वस्तु का अस्तित्व होता तो मृत्यु के बाद भी जीवन का आभास होता और लक्षण भी दिखाई पड़ते। परंतु मृत्यु के उपरांत इस भौतिक शरीर के साथ अभौतिक शरीर का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।'

'भिक्षुओ! यह बतलाओ कि क्या तुमने किसी स्वस्थ, धनवान, भरे-पूरे परिवार वाले व्यक्ति को देखा है जो मरना चाहता हो?'

'नहीं भंते! भला कोई व्यक्ति क्यों मरना चाहेगा। यही नहीं कोई रोगी और असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति भी स्वस्थ हो कर जीना चाहता है।'

'भिक्षुओ! ऐसे मे तो उसकी आत्मा को शरीर छोड़ना ही नहीं चाहिए। हमारी अपनी इच्छा के अनुसार ही हमारे शरीर को होना चाहिए और चाहने पर ही मृत्यु भी होनी चाहिए। परंतु ऐसा नहीं है जिस समय शरीर के अंग काम करना बंद कर देते हैं उसी समय शरीर का अंत हो जाता है। आत्मा जैसी शक्ति उसे चाह कर भी नहीं बचा पाती अर्थात कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता है और उसकी आत्मा उसके साथ उसके शरीर में रहकर भी उसका कोई बचाव नहीं कर पाती। आत्मा के रहने से उसकी मृत्यु उसकी इच्छानुसार ही होनी चाहिए? परंतु ऐसा नहीं है। अर्थात या तो आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है या फिर यदि कोई ऐसी चीज है तो हमारा उस पर कोई नियंत्रण नहीं है। दोनों ही स्थितियां में आत्मा नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नही होता है।'

'भंते! आत्मा के स्थान पर रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार के पृथक या सम्मिलित अस्तित्व के क्या लाभ हैं अथवा क्या उसकी कुछ हानियाँ भी हैं?'

'भिक्षुओ! जो इन पाँचों स्कंधों के सम्यक् उपभोग से जो सुख मिलता है, वह उसका लाभ है। इनसे अतिशय उपभोग से जो राग, लोभ, मोह, क्रोध, शोक उत्पन्न होते हैं, वह हानियाँ हैं जो इनके कारण उत्पन्न होती हैं। इनके अतिशय उपभोग से तृष्णा बढ़ती है और यही नहीं जिस तरह से हम उपभोग करते जाते हैं, उसी अनुपात में तृष्णा बढ़ती ही जाती है। इसका कही अंत नहीं मिलता है। और यही तृष्णा अंततः सारे दुखों का कारण बनती है।'

जो व्यक्ति भूत, वर्तमान या भविष्य में शरीर को, शरीर के अंदर या बाहर की वस्तुओं को, यह मान कर चलता है कि यह न मेरा है और न मेरा था और भविष्य में यह न मेरा रहेगा। जैसा कि हम देखते हैं कि हमारे शरीर के किसी भी अंग पर हमारा केवल एक सीमित ही नियंत्रण है। हमारे शरीर पर भी हमारा बहुत सीमित नियंत्रण है। हम जहाँ चाहे वहाँ इसे ले जा सकते हैं, उपभोग कर सकते हैं, परंतु वयवृद्धि की प्रक्रिया को नहीं रोक सकते हैं। अधिक उम्र से होने वाली कमजोरी और क्षरण को नहीं रोक सकते हैं। हमारे न चाहते हुए भी समय ऐसा आता है कि हमारा शरीर हमारे नियंत्रण से मुक्त हो जाता है और हमारा भौतिक व अभौतिक अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस समय हमारी आत्मा यदि है तो वह हमारा साथ नहीं देती, वह शरीर से न निकले तो मृत्यु नहीं होगी परंतु ऐसा नहीं होता। आत्मा जैसी वस्तु रह कर भी कुछ नहीं कर पाती। जब व्यक्ति इसे भली प्रकार समझ लेता है तो उसे इस प्रकार का लोभ, मोह, उत्पन्न नहीं होता है। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं। जैसे कोई व्यक्ति जब 20 साल का था तो वह युवा, सुंदर, क्षमतावान, बलिष्ठ और कांति से युक्त था। वही व्यक्ति

जब 70 वर्ष का हो जाता है फिर भी वह चाहता है कि वह बलिष्ठ, कांतिवान और स्फूर्तिवान बना रहे, जैसा वह 20 वर्ष की आयु में था। तो क्या मानते हो। वह ऐसा चाहते हुए भी ऐसा कर पाता है?'

'नहीं भंते।'

'यदि यह सब मेरा होता तो मैं उसे अपनी इच्छानुसार रखता परंतु ऐसा नहीं है। अत: यह मेरा नहीं है। न यह मेरी आत्मा है, न यह मैं था और न मेरा रहेगा।'

'परंतु भगवान! रूप नहीं, वेदना नहीं, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान नहीं, आत्मा नहीं तो कर्म किससे संयुक्त होगा?'

'भिक्षुओं! क्या मानते हो रूप, वेदना आदि नित्य हैं या अनित्य?'

'अनित्य' है।

'जो अनित्य है वह सुखरूप है या दु:ख रूप?'

'दु:खरूप'

'जो अनित्य है और दु:खरूप है उसे क्या ऐसा समझना कि यह मेरा है और मेरी आत्मा है क्या उचित है?'

'नहीं।'

'इसलिए भिक्षुओ! जो भूत वर्तमान भविष्य का रूप है, वेदना है, उसे इस तरह समझना चाहिए कि यह न मेरा है, न यह मेरा था और न मेरा रहेगा। इन प्रकार समझने से भिक्षु निर्वेद को प्राप्त होता है और विरक्ति होती है। विरक्ति से मुक्ति मिलती है और इस तरह का ज्ञान उत्पन्न होता है कि जो करणीय था, कर लिया और यहाँ अब कुछ करने को शेष नहीं है। यह भली प्रकार जान लेता है और अपने साधनों से संतुष्ट हो कर रहता है।' मनुष्य के द्वारा किया गया कर्म शरीर के पांच स्कंधों रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और मन से संयुक्त होता है और उसी के अनुसार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है जो इसी शरीर के साथ ही उसके जीवन काल में व्यक्तित्व के रूप में और उसके बाद स्मृति रूप में उपस्थित रहता है।

'आश्चर्य गौतम! अद्‌भुत भगवान!! जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, ढके हुए को खोल कर दिखा दे वैसे ही भगवान अंधकार दूर हो गया। सभी भिक्षुओं ने भगवान के संभाषण का अभिनंदन किया।

*****

17. गोपक मोग्गल्यायन सूत्र

इस सूत्र में भगवान के परिनिर्वाण के पश्चात आयुष्मान आनंद के द्वारा यह बताया गया है कि अपने उत्तराधिकारी के रूप में भगवान ने किसी को भी न तो नियुक्त किया है और न गुरु शिष्य की परम्परा ही बनाई है। भगवान बुद्ध ने कतिपय नियम, शिक्षापद और प्रतिमोक्ष बनाए हैं जिनका आश्रय लेकर हम अपने आपसी विवादों का निपटारा करते हैं और उनको ही अपना शास्ता मार्गदर्शक मानते हैं।

ऐसा मैंने सुना -

भगवान के महापरिनिर्वाण के पश्चाताप एक समय आयुष्मान आनंद राजगृह में वेणुवन के कलंदकनिवाप में विहार करते थे। एक दिन वह प्रातः चारिका के लिए निकले तो उन्हें लगा कि अभी ग्राम में जाने के लिए अति शीघ्र होगा। अतः पास में ही ब्राह्मण मोग्गल्यायन का कर्मांत (खेत) है वहाँ चलते हैं। मोग्गल्यायन ने उनको आता देखा तो आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन दोनों में वार्तालाप होने लगा। मोग्गल्यायन ने पूछा-

'आयुष्मान आनंद! क्या आप सब में कोई ऐसा है जो कि उन सारे गुणों से युक्त हो जिन्हें भगवान धारण करते थे।'

'नहीं! हममें से कोई भी ऐसा नहीं है जो उन सारे गुणों से युक्त हो। वे भगवान अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक एवं व्याख्याता थे। हम सब उनके बताए मार्ग पर ही बुद्ध शिष्य हो विहर रहे हैं।' आयुष्मान आनंद व मोग्गल्यायन के बीच यह कथा चल ही रही थी कि इतने में महामंत्री वर्षकार सेनापति उपनंद के साथ उस समय सैनिक तैयारियों के कामकाज को देखते हुए वहाँ आ पहुँचे। महामंत्री वर्षकार ने भी आयुष्मान आनंद से यही पूछा कि-

'आयुष्मान आनंद! क्या भगवान ने आप में से किसी भिक्षु को यह कहकर स्थापित नहीं किया कि मेरे बाद यह तुम्हारा आश्रयदाता होगा इनका आप लोग अनुकरण करें।'

'नहीं ब्राह्मण! भगवान ने इस प्रकार किसी को स्थापित नहीं किया कि वह उनके बाद हमारा आश्रयदाता होगा या जिसका आश्रय लेकर हम विहर रहे हों।' 'भो आनंद! क्या आप के संघ ने भी किसी भिक्षु को इस लायक नहीं समझा या स्थापित किया कि भगवान के परिनिर्वाण के बाद वह सबका मुखिया होगा।' 'नहीं ब्राह्मण! संघ ने भी ऐसा नहीं किया है या संघ की ओर से या भगवान की ओर से किसी ऐसे भिक्षु को नामित नहीं किया गया है जिसका प्रतिशरण लेकर हम विहर रहे हैं।'

'तो क्या आप प्रतिशरण विहीन हैं? आप में कोई विवाद या विपरीत कार्य होता है

तो उसका निवारण कैसे करते हैं?'

'ब्राह्मण हम प्रतिशरण विहीन नहीं हैं हमारा प्रतिशरण धर्म है। हम भगवान के बताए धर्म के प्रतिशरण हैं। भगवान ने शिक्षापद बनाए हैं प्रतिमोक्ष प्रज्ञापित किए हैं। प्रत्येक उपोसथ एवं पूर्णिमा को हम जितने भिक्षु एक साथ होते हैं सब मिलकर प्रतिमोक्ष व शिक्षापद का संगायन करते हैं और यदि उस समय किसी भिक्षु में कोई विकार आपत्ति या व्यतिक्रम आ जाता है तो हम सब मिलकर धर्म अर्थात प्रतिमोक्ष और शिक्षापदों के अनुसार उसका प्रतिकार करते हैं। यह भगवान का बताया हुआ धर्म करता है, हम नहीं करते।'

'आनंद! क्या इस समय आप के बीच ऐसा कोई गुरु है जिसका आप सब पूजन करते हों या उसके समीप विहार करते हैं।'

ब्राह्मण! उन भगवान सम्यक् सम्बुद्ध ने दस प्रसादनीय धर्म बताए हैं।'

1. भिक्षु प्रतिमोक्ष के संयम से युक्त हो कर विहरते हों,
2. भिक्षु बहुश्रुत व श्रुतधर हो,
3. भिक्षु थोड़े से ही, भोजन, शयनासन, ग्लानप्रत्यय से संतुष्ट रहने वाला हो,
4. इसी शरीर में मोक्ष का अनुभव करने वाला हो,
5. सामान्य जीवन मे अलोभी हो,
6. जो मृषी न हो और सबका कल्याण चाहने वाला हो,
7. प्रज्ञाविमुक्त हो और दूसरों को विमुक्ति के मार्ग पर ले जाने के लिए तत्पर हो,
8. अक्रोधी व शीलवान हो,
9. प्रज्ञा युक्त हो अर्थात अपनी प्रज्ञा से भले बुरे की पहचान करने में समर्थ हो और
10. जो मन की कमजोरियाँ हैं उनसे मुक्त होकर विहरते हो। ब्राह्मण! भगवान

उक्त प्रसादनीय धर्म कहे हैं, जिनका प्रतिशरण लेकर उनके समीप हम विहरते हैं।' यह सुनकर महामंत्री वर्षकार ने सेनापति उपनंद से कहा– 'क्या मानते हो सेनापति! ऐसा होने पर यह लोग क्या योग्य और विद्वान का ही सत्कार कर रहे हैं पूज्यनीय का ही सम्मान कर रहे हैं। पूज्यनीय की ही पूजा कर रहे हैं न?'

'जरूर यह लोग पूज्यनीय की ही पूजा कर रहे हैं। यदि यह सत्कार योग्य का सत्कार नहीं करेंगे तो किसका सत्कार करेंगे? महामंत्री वर्षकार ने पूछा?' 'आयुष्मान आनंद! आप इस समय कहाँ विहार कर रहे हैं?'' ब्राह्मण! मैं इस समय वेणुवन में विहार कर रहा हूँ।'

'आयुष्मान! आनंद इस समय वेणुवन भीड़-भाड़ से मुक्त एकांतवास करने योग्य तो हैं न।'

'हाँ वेणुवन इस योग्य है, क्योंकि उसके आप जैसे रक्षक है।'

'भो आनंद! वेणुवन ध्यान के लायक है। आप लोग ध्यानशाली है। एक बार भगवान गौतम और आप महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे तब मैंने भगवान को अनेक प्रकार के ध्यान की बात करते हुए देखा था। निश्चित रूप से भगवान आप लोगों के

ध्यान की प्रशंसा कर रहे थे।'

'ब्राह्मण! भगवान सभी तरह के ध्यान की प्रशंसा नहीं करते थे। ब्राह्मण! कई लोग काम भोगने को मिलेगा या ध्यान सीखकर लोगों को दिखाकर धन प्राप्त किया जाएगा इसलिए भी ध्यान करने का स्वांग करते थे या जो लोग आलसी होते हैं ध्यान के नाम पर मुफ्त में सम्मान और शयन आसन ग्लानप्रत्यय मिलेगा, इस आशय के साथ भी ध्यान किया करते थे। भगवान ऐसे ध्यान की प्रशंसा नहीं करते थे। भगवान ऐसे ध्यान की प्रशंसा करते थे जिससे व्यक्ति की भोगों से दूरी बढ़ती है और वह जितना है उसी से संतुष्ट होना और केवल उतना ही उपयोग करना सीखता है जितना शरीर रक्षा और सामाजिक सांस्कृतिक रूप से पर्याप्त हो। अपने शरीर की वास्तविक स्थिति उसकी नश्वरता के बारे में ध्यान कर अपने को कम से कम में ही संतुष्ट होने की साधना करता है इसे ही भगवान की भाषा में विपश्यना कहते हैं। भगवान ऐसे ध्यान की प्रशंसा करते थे।' यह सुनकर मगध महामात्य वर्षकार ने आयुष्मान आनंद के भाषण को अनुमोदित किया और उन्हें प्रणाम कर वापस चले गए। मगध महामात्य के जाने के बाद गोपक मोग्गल्यान ने पुन: पूछ कि-

'आयुष्मान आनंद! मैंने जो आपसे पूछा था वह अभी तक आपने नहीं बताया?'

'ब्राह्मण! मैंने बताया न कि हममें ऐसा कोई नहीं है जो ऐसे गुणों को धारण करता हो जो भगवान बुद्ध धारण करते थे। हम सब उनके शिष्य और अनुगामी होकर विहार कर रहे हैं। भगवान के द्वारा प्रतिपादित शिक्षापद और प्रतिमोक्ष ही हमारे मार्गदर्शक हैं।'

*****

18. ब्रह्मायु सूत्र

इस सूत्र में उस प्रचलित मान्यता को निष्प्रयोज्य एवं व्यर्थ बताया गया है जिसमें महापुरुषों में 32 लक्षणों का होना एक अनिवार्य शर्त है। भगवान बुद्ध के द्वारा यह बताया है कि इन लक्षणों का किसी महापुरुष में होना एक संयोग मात्र है।

ऐसा मैंने सुना–

एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुसंघ के साथ विदेह जनपद में चारिका करते थे। उस समय ब्रह्मायु नामक एक ब्राह्मण विद्वान मिथिला नगर में वास कर रहे थे। भगवान बुद्ध के विदेह / मिथिला आने के बारे में उन्हें जानकारी मिली तो उन्होंने अपने शिष्य से भगवान बुद्ध के बारे में बताया और कहा–

'प्रिय उत्तर! इस समय भगवान बुद्ध अपने जनपद आए हुए हैं। जैसा कि भगवान बुद्ध का इतना बड़ा कीर्ति शब्द फैला हुआ है कि वह बड़े ज्ञानी हैं और उनके सामने कोई टिक नहीं पाता, वह उनका शिष्य हो जाता है। वह बहुत बड़े धर्मसंघ के संस्थापक हैं। यह साक्षात् सम्यक् सम्बुद्ध हैं और इसी जन्म में मोक्ष दिलाने वाले हैं। ऐसे व्यक्ति, महापुरुषों में पाए जाने वाले 32 लक्षणों से युक्त होते हैं। ऐसा हमारे धर्मग्रंथों में लिखा है। चूंकि भगवान बुद्ध के बारे में ऐसी धारणा फैली हुई है कि वह प्राणियों के उद्धारक हैं, शांत हैं और सम्यक् सम्बुद्ध हैं। अत: तुम जाओ और भगवान बुद्ध के साथ रहकर इस बात की परीक्षा करो कि क्या वास्तव में श्रमण गौतम इन लक्षणों से युक्त है? ताकि उनके बारे में संतुष्ट होकर आगे उनका स्वागत सत्कार किया जाए। ऐसे महापुरुषों का दर्शन अत्यंत दुलर्भ और महाफल वाला होता है।'

ब्रह्मायु का आदेश पाकर उनके शिष्य 'उत्तर' भगवान से मिलने और गुरु के निर्देशानुसार कार्य करने चल पड़े और भगवान के पास पहुँचे। अपने कार्य को सम्पादित करने के लिए यह आवश्यक था कि भगवान के संघ में शामिल हुआ जाए। इस आशय से माणवक् उत्तर ने यथायोग्य सम्बोधन व अनुरोध कर प्रव्रज्या के लिए प्रार्थना की। भगवान के द्वारा प्रव्रज्या प्राप्त कर साथ ही वह संघ में रहने लगे और उनके उपदेशों का लाभ उठाने के साथ-साथ अपने उद्देश्य की पूर्ति में भी लग गए। भगवान के भाषणों के दौरान उन्होंने भगवान के शरीर पर अंकित महापुरुषों के 32 लक्षणों में से अधिकांश लक्षण देख लिए। भगवान के शरीर पर इन लक्षणों को देखने तथा भगवान के विषय में जानकारी प्राप्त करते उत्तर को सात माह लग गए। इस दौरान वह भगवान के पीछे साए की भांति लगे रहे और सारी जानकारी प्राप्त कर वापस लौटे। उन्होंने अपने गुरु ब्रह्मायु को पूरी जानकारी दी कि जितना समझा गया था भगवान बुद्ध का कीर्ति शब्द उससे कई गुना फैला हुआ है। वास्तव में वह भगवान, महापुरुषों में पाए जाने वाले 32 लक्षणों से युक्त है। (तात्कालिक मान्यता के

अनुसार महापुरुषों में पाए जाने वाले 32 लक्षण आज के समय अत्यंत अव्यवहारिक एवं हास्यास्पद हैं फिर भी यह अग्रलिखित है।)

1. सुप्रतिष्ठित पाद (जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो)
2. सर्वकार परिपूर्ण नाभिनेमि (पैर के तलवे में चक्र उपस्थित है)
3. आयत परिण (चौड़ी घुट्टी वाले)
4. दीर्घ अंगुल
5. मृदु तरुण हस्तपाद (नरम हथेली वाले)
6. जाल हस्त्पाद (अँगुलियों के बीच में जाल होना)
7. उत्संख पाद (गुल्फ ऊपर अवस्थत है पाद में)
8. एणी जम्ब (मृग जैसी पिण्डली वाला भाग)
9. आजान बाहु (बिना झुके घुटना छू लेने वाले लम्बे हाथ)
10. कोषाच्छादित, पुरुष इंद्रि (चमड़े से ढका लिंग)
11. सुवर्ण वर्ण (कंचन जैसे त्वचा वाले)
12. सूक्ष्म छवि अर्थात पतली चमड़ी जिस पर धूल मैल नहीं लगती
13. एकैक लोम अर्थात एक रोमाकूप में एक रोम पाया जाना
14. उर्ध्वगृ लोम (एक समान प्रदक्षिणा वाले मस्तक केश)
15. ब्राह्म ऋजु गात्र (लम्बे अकुटिल शरीर वाले)
16. सप्त उत्सद (सात अंगों में पूर्ण आकार वाले)
17. सिंह पूर्वार्ध काय
18. चित्ता नरास (दोनों कंधों के बीच बिचला भाग जिसका परिपूर्ण हो)
19. न्योग्रोध परिमंडल (शरीर की लम्बाई-चौड़ाई उचित अनुपात में हो)
20. सम्वर्त स्कंध (समान परिमाण के कंधों वाले)
21. रसग्ग सग्गी (सुंदर शिराओ वाले)
22. सिंह हनु
23. चौवालिस दंत
24. सम दंत
25. अविवर दंत
26. सुशुक्ल दाढ़ (खूब सफेद दाढ़ी वाले)
27. प्रभूत जिह्वा (जिसकी जिह्वा लम्बी हो)
28. बाम: स्वर करविंक (पक्षी की तरह आवाज वाले)
29. अभिनील नेत्र (अलसी के पुष्प जैसी नीली आँखों वाले)
30. गो पक्षम् (गाय जैसी पलक वाले)
31. ऊर्णा रोम राजी (दोनों भौहों के बीच श्वेत कपास में रोम वाले)
32. उष्णीष शीर्ष (पगड़ी जैसी सम्मिति वाले)

भगवान का कीर्ति शब्द जितना आपने बताया था उससे भी अधिक फैला हुआ है। महापुरुषों में पाए जाने वाले बत्तीसों लक्षण उनमें मौजूद हैं। वे भगवान चलते समय सबसे पहले अपना दाहिना पैर ही उठाते हैं। उनके कदम न तो अधिक दूर पड़ते हैं और न नज़दीक। वह न तो अत्यंत धीरे चलते हैं और न ही तेज़ वह केवल उतना ही आहार ग्रहण करते हैं जितना शरीर रक्षा के लिए आवश्यक हो। वह दोपहर के बाद भोजन ग्रहण नहीं करते। वह और उनके शिष्य केवल उतनी ही भिक्षा ग्रहण करते हैं जितना उस दिन के भोजन के लिए पर्याप्त और आवश्यक हो। उनके अनुशासन में किसी को भी भोजन संग्रह कर रखने का कोई अधिकार नहीं है। और न ही उनके आश्रम में किसी तरह की भोज्य सामग्री दोपहर के बाद रखी जाती है। वह और उनके भिक्षु अपना सामान अपने साथ ही रखकर चलते हैं। वहाँ भिक्षु की सम्पत्ति केवल एक घड़ा, एक पंखा, एक उस्तरा, तीन चीवर (वस्त्र), सुई धागा, आसन और भिक्षापात्र होते हैं। इससे अधिक रखने की अनुमति उसे नहीं है। उनके भाषणों के अनुसार, हमें मोक्ष इसी धरती पर इसी शरीर से मिल सकता है। मोक्ष और शांति के लिए संसार और शरीर छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। हम अपनी आवश्यकताओं पर नियंत्रण रखकर यहीं मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यह सुनकर ब्रह्मायु बहुत प्रभावित हुए और इस बात पर विचार करने लगे कि श्रमण गौतम से कैसे मुलाकात की जाए? कुछ दिनों बात वह सुअवसर आया जब चरिका करते हुए विदेह से मिथिला पहुँचे।

उनके मिथिला पहुँचने का समाचार सुनकर ब्रह्मायु उनसे मिलने पहुँचे। ब्रह्मायु ने कहा- 'भगवान! मुझे आपके बारे में पूरी जानकारी थी और मैंने यह पता भी करवा लिया था कि महापुरुषों में पाए जाने वाले 32 लक्षण आपमें विद्यमान हैं। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुयी और मन संतुष्ट हो गया। शरीर की सारी इंद्रियाँ प्रफुल्लित हो उठीं।'

'आयुष्मान ब्रह्मायु! जिन 32 लक्षणों की बात आप कर रहे हैं वह लक्षण हो सकता है मेरे अंदर हो परंतु इनका विद्वता ज्ञान, महानता और लघुता से कोई लेना-देना नहीं है। यह लक्षण एक संयोग मात्र हैं। शरीर पर पाए जाने वाले लक्षण शरीरिक रचना से उत्पन्न कौतूहल मात्र है जिन्हें व्यक्ति लघुता और महानता से जोड़ लेता है। वास्तव में इनका कोई सम्बंध नहीं है। यह केवल संयोग मात्र ही है।'

भगवान बुद्ध के मुख से यह सुनकर ब्रह्मायु अत्यंत प्रभावित हुए कि इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर सभी विद्वान अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं और यहाँ भगवान बुद्ध कह रहे हैं कि यह मात्र संयोग है और इन लक्षणों का लघुता या महानता से कोई सम्बंध नहीं है। इससे प्रभावित होकर उन्होंने भगवान का अभिनंदन और स्वागत करते हुए उनके शिष्य बन गए।

*****

19. अश्वलायन सूत्र

भगवान बुद्ध के श्रीमुख से नि:सृत अमृतवाणी का यह अंश ब्राह्मण अश्वलायन से शास्त्रार्थ के रूप में है। इसमें उन्होंने अश्वलायन के ब्राह्मण श्रेष्ठता के दावे को सतर्क निरस्त कर चतुर्वर्णी शुद्धि को सिद्ध किया गया है।

ऐसा मैंने सुना-

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक बार किसी अवसर पर कई प्रदेशों के बहुत सारे ब्राह्मण श्रावस्ती में किसी कार्य से आए और ठहरे थे। उन ब्राह्मणों ने विचार किया कि श्रमण गौतम चतुर्वर्णी शुद्धि (चतुर्वर्णी सुद्धि) की बात करते हैं। क्यों न इस बिंदु पर उनसे शास्त्रार्थ किया जाए। आज यहाँ हम लोग यहाँ भारी संख्या में उपस्थित हैं। हमारे बीच से कोई व्यक्ति जो सबसे योग्य हो वह श्रमण गौतम के पास हमारे प्रतिनिधि के रूप में जाए और उनसे शास्त्रार्थ करे। उन सारे ब्राह्मणों ने एकराय से अश्वलायन नामक ब्राह्मण को भगवान बुद्ध से शास्त्रार्थ के लिए चुना और इस सम्बंध में अश्वलायन से चतुर्वर्णी शुद्धि के ऊपर शास्त्रार्थ करने का अनुरोध किया। यह सुनकर मान्य अश्वलायन ने प्रत्युत्तर दिया।

'श्रमण गौतम धर्मवादी (बुद्धिवादी) हैं। धर्मवादी शास्त्रार्थ करने में दुष्कर होते हैं। मैं उनसे इस विषय मे वाद नहीं कर सकता हूँ।' पुन: उन ब्राह्मणों ने अपने ब्राह्मण धर्म की दुहाई देते हुए ब्राह्मण धर्म की रक्षा करने के उद्देश्य से अनुरोध किया। पुन: अश्वलायन ने यह कहकर मना किया कि गौतम से शास्त्रार्थ में सिवाय नुकसान के कोई लाभ नहीं है। तीसरे बार उन ब्राह्मणों ने कहा-

'यहाँ एकत्र हम 500 ब्राह्मणों ने आपको ब्राह्मण धर्म की रक्षा हेतु अपना नेता चुना है। अपने धर्म की रक्षा हेतु यह अवसर अत्यंत सौभाग्य से प्राप्त होता है। आप विद्वान हैं प्रज्ञाविमुक्त हैं, अत: आप शास्त्रार्थ करें। आप बिना शास्त्रार्थ किये ही न पराजित हो जाएँ। यह ब्राह्मण धर्म के लिए बहुत समय के लिए सुखकर होगा।'

अश्वलायन ने उत्तर दिया।

'मैं श्रमण गौतम से नहीं पार पा सकता श्रमण गौतम धर्मवादी और बुद्धिवादी हैं। फिर भी आप इतने लोग मिलकर आग्रह कर रहें हैं तो मैं एक बार प्रयास कर लेता हूँ। ऐसा कहकर अश्वलायन अपने शिष्यों के साथ भगवान के पास उनसे मिलने गए और यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के पश्चात बोले-

'हे गौतम! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं दूसरे वर्ण हीन हैं, ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं शेष वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न हैं, ब्रहज अर्थात ब्रह्मा से उत्पन्न व ब्रह्म निर्मित तथा ब्रह्मा

के दायाद हैं। इस विषय मे आप क्या कहते हैं?' यह सुनकर भगवान बुद्ध ने पूछा-

'लेकिन अश्वलायन! ब्राम्हणों की स्त्रियाँ भी ऋतुमती होती हैं, गर्भिणी होती हैं, बच्चों का जनन करती देखी जाती हैं, दूध पिलाती देखी जाती हैं। जिस प्रकार सभी जंतु योनि से उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार योनि से जन्म होने पर भी ब्राह्मण यह कहते हैं कि ब्राहमण ही श्रेष्ठ है।

'यद्यपि आप ऐसा कहते हैं और सही भी है कि ब्राह्मण भी अन्य वर्णों की भांति माता की योनि से पैदा होते हैं, लेकिन ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं कि ब्राहमण ही श्रेष्ठ हैं।'

'क्या मानते हो अश्वलायन तुमने सुना है कि यवन और कम्बोज में और दूसरे देशो में केवल दो ही वर्ण होते हैं आर्य और दास। दास, आर्य में बदल सकता है और आर्य, दास में बदल सकता है।'

'हाँ, मैंने सुना है वहाँ ऐसा ही होता है।'

'तो फिर आश्वलायन! ब्राह्मण को क्या बल है वह ही श्रेष्ठ हैं?'

'यद्यपि आप सही कह रहे हैं परंतु ब्राह्मण ऐसा ही कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं।'

'क्या मानते हैं आश्वलायन! क्षत्रिय यदि प्राणि हिंसक, चोर, दुराचारी, कटुभाषी और समस्त दुर्गुणों से युक्त हो तो मरने के बाद वह नरक में उत्पन्न होगा या स्वर्ग में?'

'ऐसा क्षत्रिय अवश्य ही नरकगामी होगा।'

'इसी प्रकार आश्वलायन! यदि ब्राह्मण हिंसक, चोर, दुराचारी और समस्त दुर्गुणों से युक्त हो तो मरने के बाद वह नरक में पैदा होगा या स्वर्ग में?'

'भंते ऐसा व्यक्ति चाहे वह ब्राह्मण हो वैश्य या शूद्र हो निश्चित रूप से नरकगामी होगा।'

'आश्वलायन! जब सभी अपराधी नरकगामी होंगे अर्थात मरने के बाद एक ही दंड से दंडित होंगे तो इसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कैसे हैं?'

'भंते! फिर भी ब्राहमण तो ऐसा ही कहते हैं।'

'तो क्या मानते हो आश्वलायन! क्या ब्राह्मण यदि शुभ्र उत्तम कर्मों वाला हो तो मरने के बाद सुगति अर्थात स्वर्ग को प्राप्त होता है, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र नहीं?'

'नहीं भंते! शुभ और उत्तम का करने वाला किसी भी जाति धर्म का हो वह स्वर्गगामी होगा और सुगति को प्राप्त होगा।'

'ऐसे में जब सभी वर्गों के लोग उत्तम और शुभ कार्यों के करने से सुगति को प्राप्त होते हैं तो उसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कैसे हो जाएँगे?'

'परंतु भंते! ब्राह्मण ऐसा ही मानते हैं।'

'क्या मानते हैं आश्वलायन! अच्छे काम केवल ब्राह्मण ही कर सकता है या अच्छे विचार केवल ब्राह्मण ही रख सकता है क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं?'

'नहीं गौतम! अच्छे काम या अच्छे विचार क्षत्रिय भी कर सकता है, वैश्य भी और शूद्र भी कर या रख सकता है।'

'फिर केवल ब्राह्मण ही कैसे शुद्ध और पवित्र हुए और शेष अशुद्ध और

अपवित्र?'

'लेकिन गौतम! ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं।'

'क्या मानते हो अश्वलायन! केवल ब्राह्मण ही नदी में नहा कर मैल धो सकता है अन्य वर्ण नहीं?'

'नहीं गौतम! स्नान चूर्ण लेकर तो कोई भी नदी में स्नान कर मैल धो सकता है सभी चारों वर्ण।'

'तो फिर ब्राह्मणों को क्या बल है कि केवल वही श्रेष्ठ हैं।'

'क्या मानते हो अश्वलायन! यदि चारों वर्णों के लोग अलग-अलग अपने घर से लाई हुई लकड़ी से अग्नि प्रज्जवलित करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी पृथक-पृथक शुद्ध आम की लकड़ी, चंदन की लकड़ी, अपवित्र मानी जाने वाली श्मशान की लकड़ी से आग तैयार करें तो क्या सभी आग अलग- अलग होगी या अलग-अलग अर्चिमान होगी?'

'नहीं गौतम! आग की अर्चिमानता एक समान होगी।'

'तो ब्राह्मण को क्या बल है कि केवल वही श्रेष्ठ हैं?'

'क्या मानते हो अश्वलायन! यहाँ दो जुड़वा भाई हैं उनमे से एक उपनीत है दूसरा अनपढ़ तो यज्ञ या पहुनाई में किसे पहले भोजन कराया जाएगा या या कौन अग्रासन का भागी होगा या श्रेष्ठ माना जाएगा?'

'भो गौतम! जो उपनीत है वह श्रेष्ठ होगा और अग्रासन भोजन का भागी होगा?'

'क्या मानते हो अश्वलायन! यदि यह दो जुड़वा भाई हो उनमें एक उपनीत किंतु हिंसक और दुराचारी हो और दूसरा अनपढ़ हो उपनीत न हो किंतु कल्याण धर्म हो शीलवान हो तो उनमें से किसे पहुनाई में प्रथम भोजन सम्मान मिलेगा।'

'वह जो कल्याणधर्म होगा। दु:शील को दान देने का क्या महाफल होगा अर्थात कुछ नहीं होगा?'

'अश्वलायन! पहले तू जाति पर था फिर गुणों पर पहुँचा अब चतुर्वरणी शुद्धि पर आ गया, जिसका मैं उपदेश करता हूँ।'

ऐसा कहने पर अश्वलायन चुप हो अधोमुखी हो चिंतित होकर चुप हो गए। भगवान बोले-

'अश्वलायन! पूर्व काल में जंगल में पर्णकुटी में वास करते हुए सात ब्राह्मण ऋषियों को यह गलत धारणा उत्पन्न हुई कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं। एक बार असित देवल ऋषि आए और उन सातों ऋषियों के पर्णकुटी के सामने आकर सभी को पुकारने लगे। इस प्रकार पुकारे जाने पर सातों ब्राह्मण ऋषियों को बुरा लगा और उन लोगों ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया। उन्होंने अत्यंत क्रोधित होकर असित देवल ऋषि को शाप दिया कि वह भस्म हो जाए। परंतु उनके शाप का कोई प्रभाव असित देवल पर नहीं पड़ा बल्कि उससे असित देवल को हँसी ही आ गई कि कैसे निरे मूर्ख तपस्वी हैं यह! वह सातों ऋषि क्रोध में आकर जितना श्राप देते थे उतना ही असित देवल को हँसी आती थी। यह देखकर उन्हें ऐसा लगा कि उनकी तपस्या निष्फल हो गई है। और वह परेशान हो गए। उन्हें परेशान

देखकर असित बोले- आपकी तपस्या निष्फल नहीं गई है। आप लोगों के मन में जो मेरे लिए क्रोध है उसे त्याग दें। और मेरे प्रश्न का उत्तर दें। आपको कैसे लगता है कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं? क्या आपको भली प्रकार पता है कि आपके माता- पिता या पितामह या प्रपितामह पूरी तरह शुद्ध ब्राह्मण थे उनमें कहीं किसी अन्य वर्ण का रक्त नहीं था।

'नहीं।'

'यह पूरी तरह से कोई नहीं कह सकता कि उसका रक्त पूरी तरह शुद्ध है। आप जानते हैं कि गर्भ कैसे ठहरता है! जब माता - पिता का संयोग होता है। गंधर्व उपस्थित होता है तो इस प्रकार तीनों के एक साथ संयोग से गर्भ धारण होता है। यही प्रक्रिया सभी वर्णों में एकसमान रूप से नहीं होती है या वर्णवार गर्भ धारण मे कुछ अंतर होता है?

'नहीं! गर्भ धारण की प्रक्रिया हर वर्ण में एकसमान होती है।'

'जब गर्भ धारण की प्रक्रिया भी एकसमान होती है तो यह कैसे कह सकते हो कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं? हे अश्वलायन जब असित देवल के द्वारा जाति के प्रश्नों का उत्तर वह सातों ब्राह्मण ऋषि नहीं दे पाए तो आज तुम क्या उत्तर दोगे। तुम अपनी सारी पंडिताई सहित उन ऋषियों के मात्र रसोईदार अर्थात द्रविगाहक के ही समान हो।'

ऐसा कहने पर मान्य अश्वलायन ने कहा-

आश्चर्य! गौतम अद्‌भुत!! जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, अंधे को रास्ता दिखा दे वैसे ही आपने आज प्रज्ञा पर पड़ा हुआ चतुर्वर्णी शुद्धि जैसा आवरण हटा दिया। आज से मुझे अपना अंजलिबद्ध उपासक जाने।

*****

20. अनुपद सूत्र

भगवान सम्यक् सम्बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत अमृतवाणी का यह महत्वपूर्ण हिस्सा उनके द्वारा विकसित योग पद्धति से सम्बंधित है। इसमें विपश्यना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए विपश्यना के चारों अंगों की क्रियाविधि का वर्णन किया गया है।

ऐसा मैंने सुना–

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन में विहार करते थे। उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया–

'भिक्षुओ! शारिपुत्र अनुपद धर्म विशेष, विपश्यना की भावना (अभ्यास) करता है। मैं आज तुम्हें विपश्यना के बारे में बताता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो– विपश्यना का शाब्दिक अर्थ है मन की आँख से खुद को देखना। विपश्यना के चार पद सोपनक्रम हैं–

1. कायानुपश्यना
2. वेदनानुपश्यना
3. चित्तानुपश्यना और
4. धर्मानुपश्यना।

सबसे पहले कायानुपश्यना के बारे में बताता हूँ। कायानुपश्यना इन सारी विपश्यनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है और सबसे पहले कायानुपश्यना का ही अभ्यास करना चाहिए। इसमें व्यक्ति शांत स्थान में अपने शरीर को सीधा रखकर बैठता है। स्मरण रखते हुए श्वाँस लेता है। स्मरण रखते हुए श्वाँस छोड़ता है। श्वाँस–पश्वाँस के स्थित होने के पश्चात अपने चित्त को शांत करता है। चित्त को शांत करने के पश्चात धीरे–धीरे क्रमशः पैर के तलवे और नाखून से शुरू करते हुए पाद व पैर का निचला हिस्सा, क्रमशः पैर के ऊपर का हिस्सा, पेट, बड़ी आँत, छोटी आँत, वृक्क, प्लीहा, यकृत, फुप्फुस, हृदय, अस्थि, माँस, रक्त, स्नायु, चमड़ा, आँसू, वसा, लार, नासामल, पीब, पसीना आदि शरीर के समस्त सम्भव व ज्ञात अंग–प्रयंगों को ध्यान लगाकर आँख बंद कर देखता है। इसी प्रकार क्रम से ऊपर बढ़ते हुए ढोढ़ी, नाक, मुँह, कान, मस्तक, केश को देखता है और उसकी सुंदरता - असुंदरता, निःसारता पर ध्यान लगाता है। जैसे कोई भिक्षु अनाजों से भरी पोटली को खोलकर देखे कि यह गेहूँ है, यह चावल है, यह उरद है, यह मूंग है, यह तिल है, यह मक्का है, यह सरसों है। इस प्रकार शरीर के समस्त अंगों को देखे। यह विचार करे कि जीवन के प्रारम्भिक समय अर्थात बचपन में किस प्रकार यह सारे अवयव अच्छी प्रकार कार्य करते हैं और क्रमशः धीरे–धीरे उम्र और समय के साथ इनकी क्रियाशीलता घटने लगती है। उम्र और समय के साथ–साथ सारे अंग शिथिल पड़ने लगते हैं। एक समय ऐसा आता है कि एक–एक करके अंग शिथिल पड़ते जाते हैं, उनकी क्रियाशीलता कम होने लगती है। एक

समय ऐसा भी आता है जब शरीर के यह समस्त अंग धीरे-धीरे शिथिल पड़ते हुए काम करना बंद करने लगते हैं। हृदय की धड़कने कम होते हुए एक दिन बंद हो जाती है तो उस समय सारे अंग बेकार हो जाते हैं। शरीर मृत हो जाता है। श्मशान में फेंका हुआ, जलाया हुआ देखता है। वह शरीर जो कभी इतना सुंदर था, एक समय पर फेंका हुआ और जलाकर नष्ट किया जाता है। एक दिन का मृत, दो दिन का मृत, तीन दिन का मृत शरीर देखा जाता है। इससे भी आगे बढ़कर विभिन्न प्रकार के जीवों के द्वारा शरीर को नष्ट किया जाता देखे और इन सबको अपने ऊपर अवधारित करे कि आगे आने वाले समय में उसके साथ भी ऐसा ही होने वाला है। इस तरह की अनुपश्यना, कायानुपश्यना कहलाती है।'

'भिक्षुओ! इससे आगे बढ़ते हुए व्यक्ति सुखयुक्त और दु:खयुक्त वेदनाओं अर्थात् सुख-दु:ख का अनुभव अपने शरीर पर अवधारित करे। अच्छा वातावरण होने पर सुख-शांति प्राप्त होती है और प्रतिकूल वातावरण होने पर कष्ट होता है, जन्म के समय कष्ट होता है, रोग के समय कष्ट होता है, मृत्यु के समय महान कष्ट होता है। इन सुखों और कष्टों का अनुभव करे। इसे वेदनानुपश्यना कहते हैं। इसी क्रम में आगे चित्तानुपश्यना आती है जिससे लोभ, मोह, क्रोध, द्वेष, मार्श, पष्णुता आदि का अनुभव करता है कि किस प्रकार चाहे अनचाहे यह सब चित्त को व्यथित करते हैं। इन सारी मनोभावनाओं का स्मरण करे और अपने ऊपर अवधारित करे, अनुभव करे कि इसके होने से क्या अनुभूति होती है। निश्चित रूप से बहुत ही अप्रिय अनुभूति होती है। यह चित्तानुपश्यना है।

भिक्षु चित्तानुपश्यना के बाद धर्मानुपश्यना का अनुभव करें। यह अनुभव करें कि धर्म के पाँचों नीवरण स्कंध, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान किस तरह उत्पन्न होते हैं और किस तरह जरा मरण के चक्र को पूरा करते हैं। इनकी उत्पत्ति और अस्तगमन कैसे होता है। यह विचार करे कि यदि जीवन में 'दु:ख उपस्थित है तो निश्चित रूप से उसका कारण होगा, दु:ख उत्पन्न होने के कारणों पर विचार करता है। वह यह पाता है कि दु:खों के कारण तो स्वयं दु:ख में ही मौजूद हैं और तद्नुसार उसके निवारणों के लिए अष्टांग मार्ग का चिंतन करते हुए परिपूर्णता प्राप्त करता है तो यहाँ वह चतुर्थ स्मृति प्रस्थान को प्राप्त करता है इसे धर्मानुपश्यना कहते हैं। इस प्रकार की भावना करने से चारों स्मृति प्रस्थान पूर्ण होते हैं।'

भगवान बुद्ध के इस अमृतरूपी भाषण का पान कर समस्त उपस्थित भिक्षुसंघ ने भगवान के भाषण का हर्ष ध्वनि से अभिनंदन किया।

*****

21. लोमकसंगियभद्देकरेत सूत्र

यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूत्र है जिसे भगवान बुद्ध के द्वारा भद्देकरेत सूत्र के नाम से उपदेशित किया गया था। उसे ही दोबारा आयुष्मान लोमकसंगिय के अनुरोध पर उपदेशित किया गया है। चूंकि इसे लोमकसंगिय को पृथक से दिया गया था अत: इसे पृथक से लोमकसंगिय भद्देकरेत के नाम से जाना जाता है। इसमें भगवान बुद्ध ने अतीत और भविष्य दोनों को अपने मानस पटल से हटाने पर जोर दिया है। जैसा कि हम देखते हैं कि पूरी की पूरी जातक कथाएँ और हिंदू धर्म का सम्पूर्ण साहित्य इसी तरह की कथाओं और बेसिर पैर की गप्पों से भरा पड़ा है। जातक कथाएँ भगवान के पूर्व जन्मों की कथाओं पर आधारित है। भगवान का कहना है कि अतीत में जो बीत गया और भविष्य में जो आने वाला है उसकी चिंता छोड़ दो। इसमें वर्तमान में अप्रमादी हो, आलस्य को त्याग कर अष्टांग मार्ग से आगे बढ़ते हुए सुख-शांति का उपदेश दिया गया है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय एक दिन आयुष्मान लोमकसंगिय शाक्य जनपद के कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार कर रहे थे। उन्हें यह जानकारी मिली कि भगवान के द्वारा बहुत ही महत्त्वपूर्ण भद्देकरेत सूत्र का उपदेश किया गया है। उन्होंने इस उपदेश को जानने की ठानी और पात्र चीवर ले श्रावस्ती को निकल पड़े। श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन में पहुँचकर उन्होंने भगवान से भद्देकरेत सूत्र को समझाने का निवेदन किया। भगवान बुद्ध उस समय शिष्यों के साथ ही बैठे थे। अत: उन्होंने पूर्वपाठ की भाँति अतीत और भविष्य में अनुरक्त न होकर वर्तमान में ही अनुरक्त रहते हुए अप्रमादी होकर निरंतर प्रयास करने का उपदेश किया।

'आयुष्मान लोमकसंगिय! अतीत जो बीत गया उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए जो बीत गया जो नष्ट हो गया वह कभी लौटकर नहीं आएगा और भविष्य अभी आया नहीं। अत: जो वर्तमान है उसे उसी को देखना चाहिए वर्तमान जो अवश्यंभावी है और जो होने जा रहा है उसके बारे में सोचें, चिंतन करें कि वह किस प्रकार समाज और देश के लिए हितकर हो सकता है। आज ही आलस्य त्याग कर निरालसी हो उद्यमी होकर अपने कर्त्तव्य में लग जाना चाहिए। आगे आने वाली मृत्यु है जो निश्चित है और उसका कोई समय नहीं है अत: अप्रमादी होकर अपने कर्तव्य का निर्वाहन करना चाहिए। इसे भद्देकरेत कहते हैं।'

*****

22. चुल्लकम्म विभंग सूत्र

इस सूत्र में तोदैया और शुभ्र नामक ब्राह्मण विद्वानों के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुए भाग्य और किस्मत से जुड़े तथ्यों का विभाजन करते हुए भगवान बुद्ध के द्वारा अत्यंत विषद और तर्कपूर्ण विश्लेषण किया गया है।

ऐसा मैंने सुना –

इस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन तोदइयाँ व शुभ्र ब्राह्मण भगवान के पास गए और उनसे प्रश्न किया।

'भगवान! क्या कारण है कि मनुष्य होते हुए भी सभी मनुष्य समान नहीं होते उनमें रंग, रूप, बुद्धि, धन, संपदा आदि का अंतर रहता है। सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर की संतान होते हुए भी समान नहीं होते। उनमें रोगी, स्वस्थ्य, सुंदर, कुरूप, बौने, लम्बे, धनवान, दरिद्र, प्रज्ञावान और दुष्प्रज्ञ होते हैं।'

'माणव! यह तो तुमने स्वयं उत्तर दे दिया। मैं तुमसे ही पूछता हूँ, जैसा लगे वैसा बताना। माणव! यदि सभी व्यक्ति एक ही ईश्वर के संतान हैं तो उनमें अमीरी और गरीबी क्यों हैं, व्यक्ति सुंदर और कुरुप क्यों होता है? ऐसे में तो सभी व्यक्तियों को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ्य, प्रसन्न होना चाहिए।'

'भगवान! अर्थात इसका मतलब यह हुआ कि सभी व्यक्ति किसी एक ईश्वर की उत्पत्ति नहीं है।'

'माणव! यह मैंने तो नहीं कहा। यह तो तुम ही कह रहे हो, जैसा तुम समझो।'
'परंतु भगवान! परिवर्तन और विविधता, प्रकृति का नियम है। इसलिए ऐसा है– कभी भी दो व्यक्ति एक समान नहीं हो सकते।'

'माणव! तुम्हीं तो कह रहे हो कि सभी एक ईश्वर की उत्पत्ति हैं। मैंने तो यह नहीं कहा। यदि सभी व्यक्ति एक समान नहीं हो सकते तो वह एक ईश्वर या एक शक्ति की संतान कैसे हो सकते हैं।?

'भगवान! मैं समझ गया परंतु एक शंका और बची है कि कोई व्यक्ति राजमहल में जन्म लेता है और कोई झोपड़ी में। इसमें उस व्यक्ति का क्या दोष जिसका जन्म झोपड़ी में होता है। निश्चित रूप से यह उसके पिछले जन्म के कर्म या फल ही तो है जो उन्हें इस जन्म में भोगना पड़ रहा है।'

'माणव! क्या धान के खेत में सारे पौधे एक जैसे होते हैं?'

'भगवान! धान क्या किसी भी खेत में सारे पौधे एक जैसे नहीं होते हैं। कुछ पतले, छोटे और कुछ स्वस्थ्य व मजबूत होते हैं। यही नहीं कुछ बीजों का जमाव ही नहीं हो पाता है। कुछ बीज अंकुरित होकर भी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बीच में ही मर जाते हैं। बोए

गए सारे बीजों में से एक हिस्सा ही परिपक्व हो पाता है।'

'माणव ! क्या इन पौधों या बीजों या बीज का भी पिछले जन्म का इतिहास होता है जो इन्हें इस जन्म में भोगना पड़ रहा होता है। जिन बीजों ने पिछले जन्म में अच्छे कर्म किए थे वह अच्छी ही भूमि पर पड़े, वह स्वस्थ रहे और जिन बीजों ने अच्छे कर्म नहीं किए थे वह ऐसी जगह पड़े जहाँ पानी ही नहीं था और इस तरह वह अपनी उम्र पूरी ही नहीं कर पाए। बीच में ही रोगग्रस्त होकर कालकवलित हो गए।'

'नहीं भगवान ! ऐसा नहीं है।'

'ऐसे ही माणव ! यह प्रायिकता की बात है। इसमें भाग्य और पिछले जन्मों के कर्मों जैसी कोई बात नहीं है।'

'भगवान ! यह कैसे मान लिया जाए कि जिन्होंने अच्छे कर्म किए हों उन्हें अगले जन्म में निर्धन घर मिला हो या जिन्होंने निर्दित कर्म किया हो उन्हें तिर्यक् योनि के स्थान पर उच्च कुल प्राप्त हुआ हो?'

'माणव ! क्या तुम निश्चित रूप से यह जानते हो कि तुमने पिछले जन्म में पाप कर्म किए ही थे या पुण्य कर्म ही किए थे?'

'नहीं भंते।'

'माणव ! क्या तुम जानते हो कि तुमने पिछले जन्म में कितने पुण्य किए थे जिसके बदले में तुम्हें इतना सुख प्राप्त हो गया है और अब तुम्हारे द्वारा किसी गए पुण्य कर्म समाप्त हो गए हैं। अब तुम्हारे द्वारा पूर्व जन्म में किए गए पापों को भोगने का समय आ गया है।'

'नहीं भंते।'

'माणव ! इस तरह तो क्या तुम्हारा कथन उस अंधे कुएँ की तरह नहीं हो जाता जिसका न प्रारम्भ का पता है न अंत का पता है। यह केवल अनुमान के तौर पर अपने आपको धोखा देना नहीं है?'

'माणव ! इसके विपरीत जब हमें पता ही नहीं कि हमने पिछले जन्म में पाप किए थे या पुण्य और कितने किए गए थे इस जन्म में कितने पापों या पुण्यों का भोग कर लिया गया है और कितने पाप या पुण्य भोगने के लिए अवशेष हैं तो इसकी तुलना में तो यही तर्क अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होता है कि प्रायिकता अनुसार ही यह निर्धारित होता है कि कोई व्यक्ति किस कुल में जन्म लेता है।'

'आश्चर्य भंते ! अद्भुत भंते !! अद्भुत जैसे औंधे को कोई सीधा कर दे, अंधे को रास्ता दिखा दे वैसे ही आपने मेरी आँखें खोल दी। भगवान ! आज से मुझे अपना अंजलिबद्ध उपासक जानें।'

*****

23. धातुविभंग सूत्र

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से नि:सृत अमृतवाणी का यह सूत्र उनकी शिक्षाओं का मूल अंश है। यह सूत्र भगवान बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का आधार माना जाता है। मानव शरीर में किस प्रकार तृष्णा की उत्पत्ति होती है? इसका यह एक वैज्ञानिक अध्ययन है। इच्छाओं की उत्पत्ति के आधार पर उसके निवारण का मार्ग भी इस सूत्र में बताया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध मगध में चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। राजगृह में भार्गव नाम के एक कुम्भकार (कुम्हार) निवास करते थे। यह उनके प्रिय शिष्यों में से एक थे। इसलिए वह भार्गव कुम्भकार के घर गए और भार्गव से रात्रि प्रवास के लिए इच्छा व्यक्त की। भार्गव कुम्भकार ने कहा- भगवान मेरे छोटे से आश्रयस्थल में पहले से ही एक नागरिक पुष्करसाती पृव्रजित ठहरे हुए हैं यदि आप चाहें तो उनके साथ वास कर सकते हैं। उन्होंने पुष्करसाती से रात्रिविश्राम करने के लिए पूछा और उनकी अनुमति से कुटिया में निवास किया। ध्यान और विपश्यना पूर्ण करने के पश्चात उन्होंने पुष्करसाती से पूछा-

आयुष्मान! आपके गुरु कौन हैं? अथवा आप किस वाद को मानने वाले हैं? पुष्करसाती ने उत्तर दिया-

'आयुष्मान! शाक्यकुल से पृव्रजित शाक्यपुत्त श्रमण भगवान गौतम मेरे शास्ता हैं और मैं उनके ही धर्म को मानने वाला हूँ।' भगवान बुद्ध ने अच्छी तरह पुष्ट करने के लिए पुन: पूछा कि यह भगवान गौतम कहाँ विहरते हैं? पुष्करसाती ने बताया कि भगवान गौतम सामान्यत: श्रावस्ती जनपद में विहरते हैं। तत्पश्चात पुष्ट करने के लिए भगवान ने पूछा? 'क्या तुमने बुद्ध को देखा है?'

'नहीं, अभी मुझे भगवान बुद्ध के दर्शन करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका है।' 'तो भिक्षु! आज तुम्हारी यह अभिलाषा भी पूर्ण हो गई, मैं ही गौतम हूँ।' पुष्करसाती की आँखें आश्चर्य से फटी रह गईं। उन्होंने भगवान को दंडवत प्रणाम किया और बोले- 'भगवान! मेरा अहोभाग्य जो भगवान मेरे साथ रहने के लिए स्वयं मेरे पास आए हैं। भगवान मुझे क्षमा करें। मैंने आपको आयुष्मान कर सम्बोधित किया। भगवान मुझे उपदेशित कर कृतार्थ करें।'

भगवान बोले- 'भिक्षु! व्यक्ति छह धातुओं, छह आयतनों, 18 मनोपचार और चार अधिष्ठानों से मिलकर बना है, जहाँ से उसके समस्त क्रियाकलाप संचालित होते हैं। इनकी जानकारी बहुत आवश्यक है। इनकी जानकारी से ही व्यक्ति विद्वान होता है और आर्य धर्म का ज्ञाता होता है। भिक्षु को प्रज्ञा में आलस्य नहीं करना चाहिए। सत्य की रक्षा करे। सत्य का निरंतर अन्वेषण करते रहना चाहिए। त्याग को बढ़ावे। उपशम (शांति) का अभ्यास करे। यह

धातु विभंग का मूल उपदेश है। व्यक्ति का शरीर छह धातुओं से मिलकर बना होता है-

1. पृथ्वी धातु
2. आप धातु अर्थात जल
3. अग्नि अर्थात तेज
4. वायु
5. आकाश और
6. मन अर्थात विज्ञान।

पृथ्वी धातु दो तरह की होती है- आध्यात्मिक और वाह्य। आध्यात्मिक पृथ्वी धातु है। हमारे शरीर का मांस, हड्डी, रक्त, स्नायु आदि। और बाह्य पृथ्वी धातु अर्थात धरती जिस पर हम अवस्थित हैं। चूंकि आंतरिक पृथ्वी हमारे नियंत्रण में नहीं है। समय के अनुसार यह विकृत होती रहती है। आयु वृद्धि से क्षरण को प्राप्त होती जाती है और हम चाहकर भी जैसा चाहते हैं वैसा इसको नहीं बना पाते हैं। अतः इस पर हमारा कोई भी नियंत्रण नहीं है। अर्थात यह मेरी नहीं है, ऐसा समझना चाहिए। इसी तरह आप अर्थात जल भी दो प्रकार का है- आध्यात्मिक और वाह्य। आध्यात्मिक अर्थात शरीर के अंदर का जल जो श्लेष्म, लार, रक्त, मूत्र, पीब आदि के रूप में रहता है और बाह्य में धरती पर उपलब्ध जल जिससे हमारे शरीर का पोषण होता है। इस पर चूंकि अपना कोई नियंत्रण नहीं है। अतः यही मानना चाहिए कि न तो यह मेरा है और न मैं यह स्थाई रूप से हूँ। इसे प्रज्ञा से भली प्रकार देखना चाहिए। इसी तरह से तेज धातु अंदर की, जिससे शरीर का संचालन होता है और बाह्य की जिससे शरीर को ऊर्जा मिलती है अर्थात् सूर्य की ऊष्मा। एक आध्यात्मिक वायु शरीर के अंदर रहती है। श्वास-प्रश्वास पेट और अन्य अंगों में रहने वाली सूक्ष्म वायु, और शरीर के बाहर की वायु जिससे हमारा जीवन चलता है। आकाश धातु आध्यात्मिक जैसे-शरीर के छिद्र, मुख, नासिका, कर्ण मलद्वार, मूत्रद्वार और शरीर के बाहर आकाश जिसमें हमारा वास होता है और विज्ञान अर्थात संजानन जिससे हमारे मन को इन समस्त धातुओं का अनुभव करता है, संजानन करता है। इन सब पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है फिर भी इन शरीर के अंदर की चीजों को अपना मानते हैं और उससे अतिशय लगाव रखते हैं। उसे भली प्रकार जानना कि जब इन वस्तुओं और हमारे शरीर में उपलब्ध अंगों पर कोई नियंत्रण हीं नहीं है तो यह मेरा कैसे हो जाएगा? अतः यह मेरा नहीं है और न मेरी आत्मा है और यह न मैं हूँ। इससे शरीर के प्रति जो अतिशय आसक्ति है वह समाप्त होती है। शारीरिक वेदना शांत होती है। इसको भली प्रकार जानता है। जैसे भिक्षुओ! दो लकड़ी के डंडों को आपस में रगड़ा जाए तो उससे ऊष्मा पैदा होती है और आग प्रकट होती है। उन दोनों काष्ठों को अलग करने से ऊष्मा का प्रवाह रूक जाता है। ऐसे ही भिक्षु! उपयुक्त स्पर्श के कारण सुखानुभूति की प्राप्ति होती है। दु:खयुक्त स्पर्श से दु:ख की अनुभूति होती है। यदि इस काष्ठ उपादान को हटा दिया जाए तो ऊष्मा निकलना बंद हो जाएगी। वैसे ही भिक्षुओं दु:खयुक्त वेदना वाले उपादान हटा दिए जाए जिनसे दु:खों की उत्पत्ति होती है तो दु:खों की समाप्ति हो जाएगी।

शरीर के अंदर छह आयतन या काय हैं। चक्षु आयतन, श्राण आयतन, जिह्वा आयतन, श्रवण आयतन, स्पर्श आयतन (काया या स्पर्श) और मन आयतन। शरीर के बाहर छह आयतन हैं। रूप आयतन (दर्शनीय वस्तु) शब्द आयतन, रस आयतन, गंध, स्पर्शतव्य

आयतन और धर्म आयतन। इन आध्यात्मिक आयतनों से बाह्य आयतनों का संजानन विज्ञान कहलाता है। अर्थात् छह आध्यात्मिक और बाह्य आयतनों से सम्बंधित छह विज्ञान क्रमश: चक्षु से रूप का संजानन चक्षुर्विज्ञान, कर्ण के शब्दों का संजानन श्रोतविज्ञान, घ्राण आयतन से गंध का संजानन घ्राण विज्ञान, काया या स्पर्श के द्वारा संजानित कायविज्ञान, जिह्वा आयतन से संज्ञानित रस विज्ञान और मन से सम्बंधित विज्ञान अर्थात मनविज्ञान कहलाते हैं।

इसी प्रकार 18 मनोपचार हैं। छह आयतनों (बाह्य तथा आध्यात्मिक) का संजानन तीन तरह से होता है। जैसे आँख से कोई दृश्य या रूप देखा जाता है तो उसका प्रभाव तीन तरह का होता है :-

1. वह अच्छा लगता है (सौमनस्य)
2. वह अप्रिय लगता है (दौर्मनस्य)
3. उपेक्षा भाव अर्थात देखकर भी उससे प्रभावित न होना, न अच्छा लगना और न ही बुरा लगना।

इसी तरह से कर्ण से सुने गए शब्दों के बारे में भी तीन तरह के प्रभाव उत्पन्न होते हैं- प्रिय, अप्रिय तथा बिना किसी प्रभाव से निर्लिप्त रहना। ऐसे ही प्रत्येक आयतन, नाक, जिह्वा, त्वचा तथा मन, सभी के तीन-तीन प्रभाव होते हैं। अर्थात कुल मिलाकर 18 मनोपचार। इन्हें भली प्रकार जानना तथा समझना चाहिए।

इसी तरह से आगे बढ़ने पर इन छहों आयतनों के सम्बंध में लालच या आकर्षण से सम्बंधित विचार उत्पन्न होते हैं। यह निम्नवत हैं। उन्हें सप्तपदी भी कहा जाता है।

1. लोभ सम्बंधी सौमनस्य,
2. लोभ सम्बंधी दौर्मनस्य,
3. निष्काम्यता सम्बंधी सौमनस्य,
4. निष्काम्यता सम्बंधी दौर्मनस्य,
5. लोभ सम्बंधी उपेक्षा और
6. निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा

उदाहरण के लिए पहला चक्षु सम्बंधी सप्तपदी में पहला लोभ सम्बंधी सौमनस्य तब उत्पन्न होता है जब प्रिय रूप या दृश्य देखने पर मन में यह भाव उठना कि यह मेरा होना चाहिए, लोभ सम्बंधी सौमनस्य कहलाता है। जब प्रज्ञा से यह प्रतीत होता है कि यह सम्भव नहीं है। यह मेरा नहीं हो सकता तो यह भाव लोभ सम्बंधी दौर्मनस्य कहलाता है।

प्रिय वस्तु रूप या दृष्य के सम्बंध में उदासीनता का वह भाव कि यह मेरा नहीं है और मुझे इसकी आवश्यकता भी नहीं क्योंकि यह स्थाई नहीं है और नष्ट होने वाला है। मैं इसकी इस अवस्था से ही संतुष्ट हूँ। निष्काम्यता सम्बंधी सौमनस्य कहलाता है। इस भाव के विपरीत यह भाव कि यद्यपि यह मुझे प्रिय है और मैं यह जानता भी हूँ कि यह मुझे प्राप्त नहीं हो सकता है। चूंकि यह स्थाई नहीं है। पहले भी नहीं था, आगे भी नहीं रहेगा। अत: मैं इसकी इसी अवस्था से ही संतुष्ट हूँ निष्काम्यता सम्बंधी दौर्मनस्य कहलाता है।

किसी प्रिय वस्तु रूप या दृश्य को देखने पर व्यक्ति के मस्तिष्क में उसकी एक छवि या दृश्य प्रतिबिम्ब बन जाती है जिसे चाहने पर भी वह मानस पटल से हटा नहीं पाता है।

जब वह कोई नई दृश्य या रूप का अनुभव (वेदन) करता है तो उसे पिछले बिम्ब से तुलना करते हुए अपने मानस पटल से हटाना होता है। इस तरह अंतर्मन से वह भोगों तथा छह आयतनों से स्वयं को पृथक् नहीं कर पाता। इस तरह की उपेक्षा का भाव बहुत समय तक टिक नहीं पाता। वह मौका मिलते ही निकल भागता है और स्वयं को उसी चक्र में फंसा लेता है। वह है लोभ सम्बंधी उपेक्षा। **अंतिम निष्कामता सम्बंधी उपेक्षा की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति यह भली प्रकार जान लेता है कि यह स्थाई नहीं है और इसका मूल्य मेरे द्वारा प्राप्त करने की इच्छा से ही निर्धारित होता है। अत: यदि मैं इसे प्राप्त करने की इच्छा त्याग दूँ तो इसका मूल्य स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। यही चरम स्थिति है प्रज्ञा की, ज्ञान की तथा अभ्यास की जिसे प्राप्त करने लेने पर व्यक्ति को यहीं इसी शरीर में ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। निर्वाण प्राप्त हो जाता है।** उपरोक्त में इसका केवल रूप या दृष्य का उदाहरण लेकर बताया गया है। इसी तरह का अनुभव या वेदना सभी छहों आयतनों के लिए है। वह छहों सप्तपदी उस पर बराबर रूप से कार्य करता है। चक्षु से देखे गए रूप या दृश्य के लिए, कानों से सुने गए शब्दों के लिए, जिह्वा से स्वाद के लिए, नाक से सूँघने के लिए, काया से सम्बंधित प्रिय या अप्रिय के लिए एवं मन सम्बंधित धर्म या तर्क के लिए समान रूप से पाए जाते हैं। इस प्रकार इन्हें 6 x 6 = 36 (सप्तपदी) कहा गया है।

व्यक्ति का व्यक्तित्व चार अधिष्ठानों से मिलकर बना होता है। अत: व्यक्ति को चतुराधिष्ठान भी कहते हैं, यह चार अधिष्ठान हैं–

1. प्रज्ञा अधिष्ठान
2. सत्य अधिष्ठान
3. त्याग अधिष्ठान और
4. उपशम अधिष्ठान।

इन अधिष्ठानों से मिलकर ही व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। जब तक व्यक्ति को जानकारी नहीं रहती है अर्थात वह अज्ञान रहता है तब उसे लोभ, क्रोध और बैर रहता है। चतुराधिष्ठान में सबसे पहले व्यक्ति को प्रज्ञा और परख से सत्य की रक्षा करनी चाहिए एवं त्याग की भावना को बढ़ाना चाहिए व उपशम का अभ्यास करना चाहिए।

भिक्षु! मेरे द्वारा कहे इन सूत्रों को धारण करो। यह तुम्हारे लिए दीर्घकाल तक उपयोगी होगा।'

यह सुनकर आयुष्मान पुष्करसाती बोले–

'अहो भगवान मुझे मिल गए! शास्ता मुझे मिल गए। सम्यक् सम्बुद्ध मुझे यहीं पर ही मिल गए।' यह सोचकर अपने आसन से उठकर अपना उत्तरासंग बाएँ कंधे पर डाल उकड़ू बैठ भगवान को प्रणाम किया और बोले– 'भगवान मेरे अपराध को क्षमा करें कि मैंने आपको आयुष्मान कहकर पुकारा। भगवान मेरे अपराध को आगे संयम करने के लिए बीते के तौर पर स्वीकार करें।' आयुष्मान पुष्करसाती ने पुन: प्रणाम कर भगवान को धन्यवाद किया और कहा कि 'भगवान मुझे आपके हाथों से प्रवृज्या मिले।'

इस तरह आयुष्मान पुष्करसाती ने भगवान के हाथों से प्रवृज्या पाई और कालांतर में वह बड़े अर्हत् हुए।

पाद टिप्पणी

1. सप्तपदी = 1- छः अतिरिक आयतन, आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा और मन,

2- 6 वाह्य आयतन रूप, ध्राण, श्रवण, स्वाद, स्पर्श एवं धर्मया तर्क (छहों आन्तरिक आयतनों से सम्बन्धित)

3- इन्ही छः आयतनों से सम्बन्धित विज्ञान अर्थात विजानन या संज्ञायन- चक्षुर्विज्ञान, ध्राणविज्ञान, श्रोतविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, स्पर्शविज्ञान एवं मनविज्ञान।

4- इन्ही छः विज्ञानों से सम्बंधित स्पर्श-कार्य अर्थात विजानन के उपरान्त भौतिक शरीर या उसके हिस्से से सम्पर्क और प्रतिक्रिया जैसे- चक्षुस्पर्श, घ्राणस्पर्श, श्रोतस्पर्श, जिह्वास्पर्श, कार्यस्पर्श एवं मन:संस्पर्श।

5- इन उपरोक्त छः संस्पर्शों को अनुभूत कर उसका सौमनस्य या प्रिय लगन वाला प्रभाव।

6- उपरोक्त छः संस्पर्शों को अनुभूत कर उसका दौमैनस्य या अप्रिय लगने वाला प्रभाव।

7- उपरोक्त छः संस्पर्शों को अनुभूत कर उपेक्षा (न प्रिय न अप्रिय) का प्रभाव।

यह सातों प्रभाव समेकित रूप से सत्तपदी कहलाते है।

*****

24. पुण्योवाद सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध और आयुष्मान पूर्ण के बीच हुए वार्तालाप का विवरण दिया गया है। यह उन प्रचारकों के लिए विशेष शिक्षा स्वरूप है जो कहते हैं कि कोई सुनता नहीं है। इसमें आयुष्मान पूर्ण की साधना, उनका समर्पण और भगवान के प्रति अगाध श्रद्धा का वर्णन किया गया है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे।

एक दिन आयुष्मान पूर्ण, भगवान से मिलने आए और उन्होंने भगवान से कहा- 'अच्छा हो मुझे संक्षिप्त में धर्म का उपदेश करें जिससे संयुक्त होकर मैं एकाकी, एकांतसेवी, अप्रमादी, उद्योगी और संयमी होकर विहार करूँ।'

'पूर्ण! आँखों से देखे जा सकने वाले सुंदर स्वरूप को देखकर यदि भिक्षु उसका स्वागत करता है। उसका अभिनंदन करता तो उसको नंदी अर्थात तृष्णा उत्पन्न होती है। यह नंदी या तृष्णा ही दु:खों की उत्पत्ति का कारण होती है। इसी तरह से कानों से सुने जाने वाले प्रिय शब्द, जिह्वा से चखे जाने वाले उत्तमतम स्वाद, स्पर्श में प्रणीततर वस्तु, सूँघने में प्रिय गंध का आस्वादन यदि भिक्षु नहीं करता है, उसका अभिनंदन नहीं करता। ऐसे में उसकी नंदी या तृष्णा निरुद्ध हो जाती है। तृष्णा के निरोध से दु:ख का प्रवाह रूक जाता है। मन से समझे जाने वाले संक्षिप्त में कहे तो इस उपदेश को जानकर उसमें भली प्रकार पारंगत हो तुम किस जनपद में विहार या भ्रमण करोगे?'

'भंते! मैं सूनापरांत नामक जनपद में विहार करूँगा।'

'आयुष्मान पूर्ण! सूनापरांत जनपद के वासी बहुत क्रोधी स्वभाव के हैं। वहाँ जाना ठीक नहीं है। वहाँ के लोग तुम्हें अपशब्द कहेंगे और अपमानित कर सकते हैं। यदि वह ऐसा करते हैं तो यह अच्छा नहीं होगा। ऐसी स्थिति में तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है।'

'भंते! जहाँ के लोग उत्तम हैं, सज्जन हैं, सुशील हैं और सहृदय हैं, वहाँ के लोगों को तो कोई भी समझा सकता है। ऐसी जगह जहाँ के लोग चंड हैं, क्रोधी हैं और असंयमी हैं, वहाँ के लोगों को समझाना चुनौतीपूर्ण कार्य है।'

'आयुष्मान पूर्ण! तुम्हारा कथन तो ठीक है परंतु यदि सूनापरांत जनपद के वासियों ने तुम्हें अपमानित किया तो तुम क्या करोगे?'

'भंते! मैं यह समझँगा कि सूनापरांत जनपद के वासी बहुत अच्छे हैं कि उन्होंने मुझे किसी अस्त्र या शस्त्र से नहीं मारा, केवल वचनों से ही विभूषित किया।'

'यदि पूर्ण! वह यदि तुम्हारे ऊपर दंड या शस्त्र से प्रहार करते हैं तो क्या करोगे?'

'भंते! मैं यह समझँगा कि सूनापरांत के निवासी बहुत ही सज्जन और बुद्धिमान हैं

कि उन्होंने मेरे प्राण नहीं लिए केवल मारपीट कर छोड़ दिया।'

'यदि पूर्ण! सूनापरांत के लोग तुम्हारी जान के पीछे पड़ जाएँ और क्रोध में मार ही डालें तो क्या सोचोगे?'

'भंते! मैं यह समझ लूँगा कि इस नश्वर जीवन से इन भले मानसों ने मुझे मुक्ति दिला दी। भगवान आप विपश्यना में यही सिखाते हैं कि यह शरीर गंदगी और दुःखों से भरा पड़ा है और ऐसे में यदि कोई इस मल, मूत्र, मवाद, रुधिर और अन्य घृणित पदार्थों से भरे होने और इन तरह दुःखों का महासमुद्र होने के कारण मैं यह समझ लूँगा कि सूनापरांत के लोगों ने मुझ पर उपकार कर मुझे इस नश्वर जीवन में मुक्ति दिला दी।'

'साधु पूर्ण! साधु अब मुझे विश्वास हो गया कि सूनापरांत जैसे चंड जनपद में भी तुम सफल होंगे।' इस तरह भगवान ने संतुष्ट होने और अनुमोदन करने के उपरांत भगवान की प्रदक्षिणा कर आयुष्मान पूर्ण सूनापरांत में विहार करने के लिए चले गए। सूनापरांत जनपद में एक लम्बे समय तक विहार करते हुए उन्होंने बहुत से उपासकों को ज्ञान कराया और यथाविधि सूनापरांत जनपद को भगवान के विशुद्ध तार्किक ज्ञान से आलोकित करते हुए परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

इस तरह आयुष्मान पूर्ण और भगवान के बीच संवाद सुनकर भिक्षुओ ने भगवान के भाषण और आयुष्मान पूर्ण की श्रद्धा और समर्पण का अभिनंदन किया।

*****

25. छः छक्कक (षडायतन सूत्र)

भगवान बुद्ध के मुखारविंद से निःसृत अमृतवाणी का यह सूत्र उनकी शिक्षाओं का मूल अंश है। यह सूत्र भगवान बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का आधार माना जाता है। मानव शरीर में किस प्रकार तृष्णा की उत्पत्ति होती है, इसका सूक्ष्मतम विश्लेषण इस सूत्र में किया गया है। इच्छाओं की उत्पत्ति का यह एक वैज्ञानिक अध्ययन है। इच्छाओं की उत्पत्ति के आधार पर उसके निवारण का मार्ग इस सूत्र में बताया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन दोपहर में भोजन व विश्राम के उपरांत उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! षडायतन अर्थात छह आयतनों की जानकारी बहुत महत्त्वपूर्ण है। चूंकि यह छह है इसलिए इन्हें छक्क भी कहा गया है। अष्टांग मार्ग समेत चारों स्मृति प्रस्थान इन्हीं छह आयतनों और उनसे निःस्रत छह विज्ञान कार्यों, छह स्पर्श कायों, 18 मनोपचार और 36 पदों से मिलकर बने हैं और लगभग हर स्तर पर इनकी आवश्यकता पड़ती है। निर्वाण का हर सूत्र इनसे गुजरता हुआ जाता है। इन्हीं से सांसारिक भोगों, कामना की उत्पत्ति होती है। अतः इनका विस्तार से विवेचना करता हूँ। ध्यान से धारण करो।'

1. आँख
2. नाक
3. कान
4. जिह्वा
5. त्वचा और
6. मन।

यह छः आध्यात्मिक आयतन हैं। हमारे शरीर की सारी सम्वेदनाएँ इन्हीं छह अंगों से ही अनुभूत होती है। इनसे सम्बंधित छह वाह्य आयतन हैं (बौद्ध साहित्य में इन्हें वाह्यत्म कहा गया है) जिनकी अनुभूति इन्हीं से होती है, यह वाह्य आयतन हैं-

1.	रूप	आँख से सम्बंधित
2.	गंध	नाक से सम्बंधित
3.	शब्द	कान से सम्बंधित
4.	रस या स्वाद	जिह्वा से सम्बंधित
5.	स्पर्शव्य	त्वचा से सम्बंधित
6.	धर्म	मन से सम्बंधित

इन आंतरिक और बाह्य आयतनों के सम्मिलन से ही तत्सम्बंधित अनुभूति होती है। इस अनुभूति का पहला चरण संजानन के रूप में होता है जिसे विज्ञान कहते हैं। अर्थात

आँख और रूप के सम्मिलन से चक्षुविज्ञान

नाक और गंध से घ्राणविज्ञान

कान और शब्द से श्रवणविज्ञान

जिह्वा और रस के सम्मिलन से जिह्वाविज्ञान

त्वचा और स्पर्शव्य से कायविज्ञान, और

मन तथा धर्म के सम्मिलन से मनविज्ञान

इससे एक कदम आगे चलने पर इस प्रकार उत्पन्न विज्ञान जब कार्य रूप में आता है तो उसे संस्पर्श कहते हैं।

आँख से सम्बंधित चक्षुस्पर्श

नाक से सम्बंधित घ्राणस्पर्श

कान से सम्बंधित श्रोतस्पर्श

जिह्वा से सम्बंधित जिह्वास्पर्श

त्वचा से सम्बंधित कायस्पर्श, और

मन से सम्बंधित मन:स्पर्श। इन छह स्पर्शों के पृथक-पृथक् तीन प्रभाव होते है-

1. सुंदर और मन को आनंदित करने वाली अनुभूति होती है।
2. अप्रिय और कटु अनुभूति होती है।
3. व्यक्ति उसके अनुभव से उदासीन रहता है अर्थात न प्रिय और न अप्रिय। आँखों से देखे गए रूप से तीन तरह की अनुभूति होती है। रूप या देखी गई वस्तु प्रिय लगती है अथवा अप्रिय लगती है अथवा प्रिय या अप्रिय की कोई अनुभूति नहीं होती है और व्यक्ति उससे उदासीन रहता है। इसी तरह से अन्य पाँचों आयतनों के बारे में तीन प्रभाव उत्पन्न होते हैं- प्रिय, अप्रिय और उदासीन। इन्हें मनोपचार कहते हैं। इस तरह वस्तु और अन्य आयतनों से सम्बंधित को मिलकर कुल 18 मनोपचार होते हैं। इनसे एक कदम और आगे बढ़ते हैं अर्थात इन आयतनों की अत: मन में क्या प्रतिक्रिया होती है। इनमें से प्रत्येक आयतन से सम्बंधित लोभ से जुड़ी हुई छह भावनाएँ होती हैं, जिसका अनुभव होता है। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. लालच सम्बंधित सौमनस्य- रूप या वस्तु के सुंदर और प्रिय होने पर उसे प्राप्त करने की इच्छा लालच से सम्बंधित सौमनस्य कहलाती है।

2. लालच सम्बंधित दौर्मनस्य- किसी वस्तु या रूप के अप्रिय होने पर उससे प्रभावित होने का भय कि यह अत्यंत ही अप्रिय है कहीं यह मुझे न मिल जाए या मुझे इसका कहीं साथ न करना पड़े। यह लालच से सम्बंधित दौर्मनस्य कहलाता है।

3. निष्कामता सम्बंधित सौमनस्य- उपेक्षा की यह भावना कि यद्यपि यह प्रिय है तथा यह मुझे मिले या न मिले इसका मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ता। यह निष्कामता सम्बंधित सौमनस्य कहलाता है।

4. निष्कामता सम्बंधित दौर्मनस्य- उपेक्षा की यह भावना जिसमें कि यद्यपि यह मुझे पसंद नहीं है, अप्रिय है तथापि मुझे इसके पास या इसके साथ रहना पड़े इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह निष्कामता सम्बंधित दौर्मनस्य कहलाता है।

5. लोभ सम्बंधित उपेक्षाएँ – जो लोग या भिक्षु आर्य धर्म में अच्छी प्रकार दीक्षित नहीं है, यह रूप आदि छहों आयतनों को यह मानते हुए कि यह नुकसान दायक है और इसमें आसक्त होने को मना किया गया है वह इनमें अपेक्षा का भाव रखता है। परंतु अंतर्मन से वह भोगों के प्रति और छहों आयतनों से स्वयं को पृथक् नहीं कर पाता। इस तरह की उपेक्षा का भाव बहुत समय तक रूक नहीं पाता और ऐसा व्यक्ति या भिक्षु मौका पाते ही निकल भागता है और स्वयं को पुनः उसी भोग चक्र में फंसा लेता है। इसलिए इससे लोभ सम्बंधित उपेक्षा कहा गया है।

6. निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा – रूप आदि छहों आयतनों की वास्तव में भली प्रकार परीक्षा कर और उनकी निःसारता को समझकर जो व्यक्ति या भिक्षु इनकी उपेक्षा करता है तो इस प्रकार की उपेक्षा निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा कही जाती है।

भिक्षुओ! इस प्रकार 36 पदों को भली प्रकार समझना चाहिए। लोभ सम्बंधी सौमनस्य का त्याग करो, लोभ सम्बंधी दौर्मनस्य का त्याग करो, निष्काम्यता सम्बंधी सौमनस्य का त्याग करो, निष्कायम्यता सम्बंधी दौर्मनस्य का त्याग करो, और लोभ सम्बंधी उपेक्षाओं का त्याग करो, केवल **निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा को स्वीकार करो उसे अनुसार आचरण करो यह मेरी खोज का सार है। मुक्ति का मार्ग है।'**

भिक्षु इस भाषण से इतने प्रभावित हुए कि उन सबने हर्ष ध्वनि से भगवान का अभिनंदन किया।

*****

26. महाषडायतन सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा शरीर के छहों आयतनों, भीतरी और बाह्य दोनों का स्पर्श व विज्ञान के साथ सम्मिलन और उसके उत्पन्न बिम्ब से मस्तिष्क को किस प्रकार पृथक रखना है, का वर्णन किया गया है। यह बताया गया है कि इन आयतनों को मस्तिष्क पर प्रभावी न होने देने से ही निर्वाण और जीवन के रहते मुक्ति का अनुभव होता है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन दोपहर के भोजन व विश्राम के उपरांत उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ!' हमारे मन-मस्तिष्क का नियंत्रण छह धातुओं से होता है। इन छह धातुओं को सामूहिक रूप से षडायतन अर्थात छह आयतन कहा जाता है। इनके बारे में जानकारी होना बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अष्टांग मार्ग समेत चारों स्मतिप्रस्थान कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मनुपश्यना इन्हीं छह आयतनों और उनसे निःस्रत छह विज्ञान कार्यों, छह स्पर्श कार्यों, 18 मनोपचार और 36 पदों से मिलकर बने हैं। लगभग हर स्तर पर इनकी आवश्यकता पड़ती है। निर्वाण का हर सूत्र इनसे गुजरता हुआ जाता है। इन्हीं से सांसारिक भोगों, कामना की उत्पत्ति होती है। अतः इसका विस्तार से विवेचना करता हूँ, ध्यान से धारण करो -

हमारे शरीर में छह आंतरिक आयतन हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. आँख
2. नाक
3. कान
4. जिह्वा
5. त्वचा और
6. मन।

हमारे शरीर की सारी संवेदनाएँ सर्वप्रथम इन्हीं छह अंगों से ही अनुभूत होती हैं। इनसे सम्बंधित छह बाह्य आयतन हैं जिनकी अनुभूति इन्हीं से होती है और यह एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। यह बाह्य आयतन हैं-

1.	रूप	आँख से सम्बंधित
2.	गंध	नाक से सम्बंधित
3.	शब्द	कान से सम्बंधित
4.	रस या स्वाद	जिह्वा से सम्बंधित

5. स्पर्शव्य त्वचा से सम्बंधित और
6. धर्म मन से सम्बंधित।

इन आंतरिक और बाह्य आयतनों के सम्मिलन से ही तत्सम्बंधित आयतनों की अनुभूति होती है। इस अनुभूति का पहला चरण संजानन के रूप में होता है, जिसे विज्ञान कहते हैं, अर्थात-

1. आँख और रूप के सम्मिलन से चक्षुविज्ञान
2. नाक और गंध से घ्राणविज्ञान
3. कान और शब्द से श्रवणविज्ञान
4. जिह्वा और रस के सम्मिलन से जिह्वविज्ञान
5. त्वचा और स्पर्श से कायविज्ञान
6. मन तथा धर्म के सम्मिलन से मनविज्ञान।

इससे एक कदम आगे चलने पर इस प्रकार उत्पन्न विज्ञान जब कार्य के रूप में आता है तो उसे संस्पर्श कहते हैं-

1. आँख से सम्बंधित चक्षुस्पर्श
2. नाक से सम्बंधित घ्राण स्पर्श
3. कान से सम्बंधित श्रोत स्पर्श
4. जिह्वा से सम्बंधित जिह्वा स्पर्श
5. त्वचा से सम्बंधित कायस्पर्श और
6. मन से सम्बंधित मन: स्पर्श

इन स्पर्शों के पृथक-पृथक् तीन प्रभाव होते हैं-

1. सुंदर और मन को आनंदित करने वाली प्रिय अनुभूति हो सकती है।
2. अप्रिय और कटु अनुभूति होती है, अथवा
3. व्यक्ति उसके अनुभव से उदासीन रहता है अर्थात न प्रिय और न अप्रिय।

1. आँखों से देखे गए रूप या सुंदर या सुंदर वस्तु से तीन तरह की अनुभूति होती है। रूप या देखी गई वस्तु प्रिय लगती है, अथवा अप्रिय लगती है, अथवा प्रिय या अप्रिय की कोई अनुभूति नहीं होती है और व्यक्ति उससे उदासीन रहता है। इसी तरह से पाँच आयतनों श्रवण, घ्राण, चक्षु, रस, स्पर्श और मन के बारे में भी तीन प्रभाव उत्पन्न होते हैं- प्रिय, अप्रिय और उदासीन। इन्हें मनोपचार कहते हैं। इस प्रकार छह आयतनों से सम्बंधित को मिलाकर कुल 18 मनोपचार होते हैं।

इनसे एक कदम और आगे बढ़ने पर जब लोभ या लालच के मनोवेग से इन आयतनों को परखते हैं तो प्रत्येक आयतन से सम्बंधित लोभ से जुड़ी हुई छह भावनाएँ होती हैं, जिसका अनुभव होता है। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. **लालच से सम्बंधित सौमनस्य**- रूप या वस्तु के सुंदर और प्रिय होने पर उसे प्राप्त करने की इच्छा लालच से सम्बंधित सौमनस्य कहलाती है।
2. **लालच से सम्बंधित दौर्मनस्य**- किसी वस्तु या रूप के अप्रिय होने पर उससे

प्रभावित होने का भय कि यह अत्यंत अप्रिय है। कहीं यह मुझे न मिल जाए या मुझे इसका कहीं साथ न करना पड़े। यह लालच से सम्बंधित दौर्मनस्य कहलाता है।

3. **निष्कामता सम्बंधित सौमनस्य**- उपेक्षा की यह भावना कि यद्यपि यह प्रिय है तथा यह मुझे मिले या न मिले इसका मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ता। यह निष्कामता सम्बंधित सौमनस्य कहलाता है।

4. **निष्कामता सम्बंधित दौर्मनस्य**- उपेक्षा की वह भावना जिसमें कि यद्यपि यह मुझे पसंद नहीं है, अप्रिय है, तथापि मुझे इसके पास या इसके साथ रहना पड़े इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह निष्कामता सम्बंधित दौर्मनस्य कहलाता है।

5. **लोभ सम्बंधित उपेक्षाएँ** - जो लोग या भिक्षु आर्य धर्म में अच्छी प्रकार दीक्षित नहीं हैं। रूप आदि छहों आयतनों को यह मानते हुए कि यह नुकसानदायक है और इसमें आसक्त होने को मना किया गया है। वह इनमें उपेक्षा का भाव रखता है। परंतु अंतर्मन से वह भोगों के प्रति और छहों आयतनों से स्वयं को पृथक् नहीं कर पाता। इस तरह की उपेक्षा का भाव बहुत समय तक रूक नहीं पाता और ऐसा व्यक्ति या भिक्षु मौका पाते ही निकल भागता है और स्वयं को पुन: उसी भोग चक्र में फंसा लेता है। इसलिए इससे लोभ सम्बंधित उपेक्षा कहा गया है।

6. **निष्कामता सम्बंधित उपेक्षा**- रूप आदि छहों आयतनों की वास्तव में भली प्रकार परीक्षा कर और उनकी नि:सारता को समझकर जो व्यक्ति या भिक्षु इनकी उपेक्षा करता है तो इस प्रकार की उपेक्षा निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा कही जाती है।

भिक्षुओ! इस प्रकार 36 पदों को भली प्रकार समझना चाहिए। **लोभ सम्बंध सौमनस्य (सुख) का त्याग करो, लोभ सम्बंधी दौर्मनस्य (दु:ख) का त्याग करो, निष्काम्यता सम्बंधी सौमनस्य का त्याग करो, निष्काम्यता सम्बंधी दौर्मनस्य का त्याग करो और लोभ सम्बंधी उपेक्षाओं का त्याग करो केवल निष्काम्यता सम्बंधी उपेक्षा को स्वीकार करो तथा उसके अनुसार आचरण करो। यह मेरी खोज का सार एवं मुक्ति का मार्ग है।**

भिक्षु इस भाषण से इतने प्रभावित हुए कि सबने हर्षध्वनि से भगवान का अभिनंदन किया।

*****

27. नगर विंदेय सूत्र

इस सूत्र में भगवान के द्वारा नगर विन्देय नामक ग्राम में उपदेश करते हुए यह बताया गया है कि किस तरह के ब्राह्मण श्रमण आदर सत्कार के पात्र होते हैं और किस तरह के ब्राह्मण श्रमण सत्कार के पात्र नहीं होते हैं। इसी तरह से किस तरह के शैक्ष्य सत्कारयोग्य होते हैं और किस तरह के शैक्ष्य सत्कारयोग्य नहीं होते हैं।

ऐसा मैंने सुना -

एक बार भगवान बुद्ध एक बड़े भिक्षुसंघ के साथ कोशल जनपद में नगर विंदेय नामक ब्राह्मणों के ग्राम में पहुँचे। जब वहाँ के ब्राह्मणों ने सुना कि नगर में अर्हत भगवान सम्यक् सम्बुद्ध आए हुए हैं तो उन सबने उनसे मिलकर आशिर्वाद लेने की सोची और समूह के समूह जैसे जिसको पता चला वह भगवान के दर्शन करने पहुँचा। भगवान ने उन सबको सम्बोधित करते हुए कहा-

'यदि गृहपतियों! तुमसे अन्य मतों के समर्थक परिव्राजक यह पूछें कि किस प्रकार के ब्राह्मणों का सत्कार सम्मान और पूजन करना चाहिए और किस प्रकार के ब्राह्मणों का सत्कार, पूजन, सम्मान, नहीं करना चाहिए, तो यह कहना कि जो ब्राह्मण श्रमण छहों आयतनों से अनुभूत चक्षुर्विज्ञेय, जिह्वाविज्ञेय और मनविज्ञेय भौतिक सुखों और दु:खों के प्रति उदासीन हों और जो मृदु वचन व कटुवचन में एक समान व्यवहार रखते हों सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करते हों उनका सत्कार करना चाहिए। और इसके विपरीत जो ब्राह्मण कटुभाषण और मृदुभाषण से तेजी से प्रभावित होने वाले हों, छहो आयतनों से अनुभूत होकर वैसा ही प्रतिव्यवहार करने वाले हो, लोभी हो, अदत्तदान लेने वाले हो, वह सत्कार के पात्र नहीं होते हैं।

यदि अन्यतीर्थक यह पूछें कि ऐसे ब्राह्मण श्रमण जो अभी शैक्ष्य है तो उनके बारे में कैसे यह जाना जाए कि कौनशैक्ष्य सत्कार पाने वाले है और कौन से सत्कार पाने वाले नहीं होते हैं। तो इस प्रकार बताना कि जो ब्राह्मण श्रमण अरण्य में रहकर छहो आयतनों और उससे उत्पन्न नंदी (भौतिक सुखों के प्रति इच्छा) पर विजय पाने का उपक्रम कर रहे हो उनका सत्कार करना चाहिए क्योंकि वह आयुष्मान सार्थक प्रयास कर रहे हैं। वहाँ अरण्य में ऐसे वाह्य आयतन रूप, शब्द, स्वाद, गंध, स्पर्शकाय, और धर्म उपलब्ध ही नहीं होते हैं कि उनके प्रभाव में आया जा सके। और इस तरह वह नियंत्रण करना सीखते हैं ऐसे शैक्ष्य आदर सत्कार के पात्र होते हैं। इसके स्थान पर ऐसे शैक्ष्य जो इनके विपरीत कार्य करते हैं वह केवल पद प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मात्र दिखावा करते हैं अत: ऐसे शैक्ष्य सत्कार गुरुकार के पात्र नहीं होते।'

भगवान के ऐसे तार्किक सम्भाषण से संतुष्ट प्रफुल्लित व सम्प्रहर्षित होकर सभी उपस्थित भिक्षुओं ने भाषण का अभिनंदन किया।

*****

28. पिंडपात (भिक्षा) परिशुद्ध सूत्र

भगवान बुद्ध की अमृतवाणी का यह अंश विशेष रूप से भिक्षुओ को समर्पित है। भिक्षाटन का सिधांत और मूलाधार क्या है इसका विवेचन करते हुए इस सूत्र में शून्यता का अर्थ बहुत ही सरल शब्दों में भगवान बुद्ध के द्वारा समझाया गया है।

ऐसा मैंने सुना–

एक समय भगवान राजगृह में वेणुवन के कलंदक निवाप में विहार करते थे। एक दिन आयुष्मान शारिपुत्र सायंकाल ध्यान के बाद उनसे मिलने आए। उन्हें देखकर भगवान बोले–

'शारिपुत्र! तुम्हारी इंद्रियाँ शांत हैं अर्थात शरीर अत्यंत प्रसन्न हैं और छवि अत्यंत परिशुद्ध! आजकल तुम किस तरह से विहार कर रहे हो।'

'भंते! मैं इस समय अधिकतर शून्यता से विहार कर रहा हूँ।'

'साधु शारिपुत्र! साधु यह शून्यता विहार, अत्यंत महाफलवाला है। इसमें जो भी भिक्षु यह भावना करे कि मैं शून्यता से विहरूँ तो उसे यह देखना चाहिए कि उसके दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों में, उसके छहों आयतनों में, मन मस्तिष्क में, धार्मिक शिक्षा, विपश्यना, एकांतसाधना के अतिरिक्त किसी प्रकार का विकार या नया तत्व प्रविष्ट नहीं होना चाहिए। विशेष रूप से भिक्षाटन के लिए संघाराम छोड़ते और वापस आते समय छहो आयतनों से सम्बद्ध कोई भी नवीन तत्व प्रविष्ट और स्थित नहीं होना चाहिए यही शून्यता विहार है।'

भिक्षाटन का मन्तव्य अपरिग्रह और न्यूनतम साधनों से संतुष्ट रहने से है। अगले दिन या भविष्य के लिए कुछ भी संग्रह न कर केवल उतना ही गृहण करना जितना उस दिन के शरीर पोषण के लिए पर्याप्त हो, भिक्षाटन का मूलाधार है।

भिक्षाटन हेतु वह जिस मार्ग से ग्राम में प्रविष्ट हुआ और जिस मार्ग से पिंडपात के उपरांत ग्राम के बाहर निकला, जिस मार्ग से भिक्षा के लिए भ्रमण किया वहाँ चक्षुर्विज्ञेय, घ्राणविज्ञेय, कर्णप्रिय, जिह्वा विज्ञेय, त्वचाविज्ञेय तत्वों (अत्यंत सुंदर रूप, मधुर वाणी, प्रिय गंध, स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ, स्वादिष्ट पेय, सुंदर शरीर आदि मन को आनंदित करने वाली वस्तु) को देखकर मेरे मन में कोई राग या लगाव, मोह, प्रतिहिंसा इस समय अवशेष तो नहीं बची है। यदि ऐसी चीज मानसपटल पर अवशेष हो तो उसे समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए और शारिपुत्र! भिक्षु को यह सोचना चाहिए कि उसके पाँचों कामगुण विषय भोग समाप्त हो गए हैं या नहीं। उसे यह परीक्षण करना चाहिए कि पूरी दिनचर्या में क्या कहीं भी पाँचों कामगुणों और छहों आयतनों में किसी तरह का कोई लोभ, मोह, क्रोध, निंदा आदि प्रविष्ट तो नहीं हो गई है। इन तथ्यों का प्रविष्ट न होना या प्रविष्ट होने के उपरांत उसे

निकालकर बाहर करना ही शून्यता विहार कहलाता है और इसी को परिशुद्ध पिंडपात कहा जाता है। भिक्षुओ! पिंडपात के लिए जब भिक्षु ग्राम में प्रवेश करता है या भ्रमण करता है और बाहर निकलता है। ऐसे में उसे हर तरह के छहों आंतरिक आयतनों के विज्ञेय बाह्य आयतनों का सामना होता है। उस समय उसे सर्वाधिक सावधान रहने की आवश्यकता होती है। ऐसे में शून्यताविहार और परिशुद्ध पिंडपात जिससे उसके मन और आंतरिक आयतनों पर कोई प्रभाव न पड़े और जैसे वह ग्राम में प्रवेश के पहले थे वैसे ही वहाँ से बाहर निकलने के बाद भी हो। यही परिशुद्ध पिंडपात और शून्यता विहार है। यह प्रत्येक भिक्षु को सीखना चाहिए और करना चाहिए तभी भिक्षा परिशुद्ध होती है, ऐसा न होने से बहुत बड़े अनर्थ की सम्भावना होती है। इसीलिए भिक्षु के लिए यह विहित किया गया है कि वह एकाहारी होगा, विकाल भोजन से विरत रहेगा और निरंतर भृमणशील रहते हुए यह सुनिश्चित करेगा कि एक स्थान पर एक ही दिन का विश्राम हो और दूसरे दिन का विश्राम दूसरे स्थान पर हो।

भगवान के सम्भाषण से संतुष्ट हो सभी भिक्षुओं ने भाषण का अभिनंदन किया।

*****

29. इंद्रिय भावना सूत्र

भगवान बुद्ध की आभा से उद्भूत यह उपदेश उस भ्रम को दूर करता है जो अक्सर अज्ञानवश उत्पन्न हो जाता है कि इंद्रियों का शमन ही धर्म का निचोड़ है। भगवान के द्वारा यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञानेंद्रियों का शमन नहीं वरन उनका सम्यक् उपयोग करते हुए उपभोग की अपनी सीमा निर्धारित कर उनका सम्यक् सदुपयोग जो किसी के लिए भी कष्टकारक न हो धर्म और इस सूत्र इंद्रियभावना का मूल उद्देश्य है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान कजंगल के सुवेणुवन में विहार करते थे। उस समय एक दिन ब्राह्मण पारासिय का शिष्य उत्तर माणवक उनसे मिलने आया। यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के पश्चात भगवान ने ही उससे पूछ लिया कि 'माणवक उत्तर! क्या पारासिय ब्राह्मण शिष्यों को इंद्रियभावना का उपदेश करते हैं?'

'हाँ भंते! वह अपने शिष्यों को इंद्रियभावना का उपदेश करते हैं।'

'माणवक उत्तर! पारासिय ब्राह्मण किस प्रकार इंद्रियभावना का उपदेश करते हैं।'

'भंते! वह इस प्रकार इंद्रियभावना का उपदेश करते हैं कि आँखों से सुंदर रूप नहीं देखना चाहिए, मधुर संगीत नहीं चाहिए, अत्यंत स्वादिष्ट भोजन ग्रहण नहीं करना, मन को प्रिय लगने वाली एसी कोई भी चीज गृहण नहीं करनी चाहिए जो अच्छी लगे।

'उत्तर! जैसा पारासिय ब्राह्मण का कथन है उस तरह तो अंधा व बहरा व्यक्ति बहुत बड़ा भावतेंद्रिय होगा। क्योंकि वह कुछ भी अच्छा बुरा न तो सुन ही सकता है न देख ही सकता है। यह सुनकर ब्राह्मण पारासिय का शिष्य अनुत्तरित हो गया। यह देखकर भगवान ने आयुष्मान आनंद को सम्बोधित करते हुए कहा-

'आनंद! पारासिय ब्राह्मण दूसरी तरह अपने शिष्यों को इंद्रियभावना का उपदेश करता है आर्य विनय में इसे इंद्रियभावना नहीं कहते। आर्यधर्म में इंद्रियभावना का उपदेश करता हूँ ध्यान लगाकर सुनो-

आर्यविनय में आँखों से देखकर, कानों से सुनकर भिक्षु को पसंद नापसंद ज्ञात होती है। वह समझता है कि यह मुझे पसंद है और यह मुझे नापसंद है किंतु वह उसे अपने मन में टिकने नहीं देता। जैसे आनंद व्यक्ति अपनी पलकें उठाता- गिराता है, उसी तरह से भिक्षु भी इन प्रिय रूपों, शब्दों, गंध व स्पर्शव्य को अपने मन मे टिकने नहीं देता। आनंद! जैसे गर्म तवे पर पानी की छींट मारने पर पानी की छींट बुल बुला बनकर उड़ जाती है, वैसे ही भिक्षु के मन मे भी पाँचों कामगुणों से युक्त प्रिय व अप्रिय वाह्य आयतन टिकने नहीं पाते। यदि व्यक्ति कुछ देखेगा नहीं, सुनेगा नहीं, त्वचा से महसूस ही नहीं करेगा तो वह तो आदमी की श्रेणी से ही बाहर हो जाएगा। व्यक्ति को सब कुछ सुनना है, देखना है, अनुभूत करना है और फिर प्रज्ञा

से यह निष्कर्ष निकालना है कि इसका कितना सेवन उचित है। भिक्षुओ के लिए केवल उतना ही विहित है जो प्राण रक्षा और शरीर के सम्पूर्ण संचालन के लिए आवश्यक हो। उपासकों के लिए यह सीमा अपने घर-परिवार के सुखमय जीवन निर्वाह तक जाती है जहाँ तक दूसरे गृहपतियों को उसके कारण कष्ट न हों। ऐसा तभी हो सकता है जब हम अपनी आवश्यकताओं को अपनी सीमा के अनुसार नियमित कर लें। किसी भी वस्तु का अनियंत्रित सेवन ही समस्त कष्टों का मूल आधार है। धर्म मे यह इंद्रियभावना है इस प्रकार आनंद मैंने इंद्रियभावना को स्पष्ट किया। अत: आनंद! यह वृक्षमूल है, शून्यागार है, प्रमाद मत करो पीछे पश्चाताप मत करना यह मेरा तुम्हारे लिए अनुशासन है।

आयुष्मान आनंद ने संतुष्ट हो भगवान के सम्भाषण का अभिनंदन किया।

*****

30. चुल्लसकुलुदायि सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा सकुल उदायी नामक तत्कालीन उपदेशक के मत 'सबसे सुंदर से भी सुंदर' का प्रमाण सहित खंडन किया गया है। इस खंडन को सकुल उदाई ने स्वीकार करते हुए अपनी परिषद् सहित प्रव्रज्या ग्रहण की। इस प्रसंग का विवरण दिया गया है।

ऐसा मैने सुना-

एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के कलंदकनिवाप में विहार करते थे। उस समय सकुल उदायी नाम के एक परिव्राजक एक बड़ी परिषद् के साथ राजगृह में निवास करते थे। एक दिन भगवान बुद्ध उनके निवास कर पहुँचे। तत्समय वह अपनी परिषद् में विद्यमान थे उन्हें आया देखकर यथायोग्य स्वागत सत्कार के उपरांत सकुल उदायी ने भगवान बुद्ध से कहा 'जब मैं यहाँ नहीं रहता हूँ तो यह परिषद् नानाप्रकार की व्यर्थ कहानी कहती बैठी रहती है और जब मैं रहता हूँ तो यह परिषद् मेरा ही मुँह देखती रहती है और जब आप इस परिषद को अध्यक्षता करते हैं तो परिषद् केवल आपका मुँह देखती रहती है। भगवान हमें उपदेश करें।'

'जाने दो उदाई! आज आप बताओ, आप उपदेश करो।'

'भगवान! अभी कुछ समय पहले वह जो सर्वज्ञानदर्शी और सर्वांगसम्पन्न होने का दावा करने वाले निगंठ नात पुत्र हैं (जैन गुरु महावीर स्वामी) वह कहते है कि उन्हें हर समय सोते जागते, उठते-बैठते निरंतर आर्य ज्ञान उपस्थित रहता है। वह मेरे प्रश्नों को सुनकर इधर-उधर की बात कहने लगे और दूसरा भाषण करने लगे उन्होंने कोप और द्वेष प्रकट किया तब भगवान मुझे ऐसा लगा कि निश्चित रूप से आप ही सबसे बड़े ज्ञाता हैं और कुशल धर्म का उपदेश करते हैं।'

'उदाई! जो अनेक प्रकार के पूर्व जन्मों के ज्ञाता हैं वह मुझसे पूर्वांत के विषय में प्रश्न पूछें। मैं उनसे पूर्वांत के बारे में प्रश्न पूछ उनके चित्त को प्रसन्न करूँ वह मेरे मन को प्रसन्न करें। इसको छोड़ो मैं तुम्हे धर्म बताता हूँ, तर्क बताता हूँ। ऐसा होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने से यह उत्पन्न है, इसके न होने से यह नहीं होता, इसके निरुद्ध होने से यह निरुद्ध होता है।'

'भंते! यह तो ठीक है परंतु मुझे लगता है कि मैं अपने आचार्य के मत के अनुसार प्रश्नोत्तर कर आपको प्रसन्न करूँ।'

'उदायी। आपके अपने आचार्य के मत में क्या होता है?'

'भंते। हमारे मत में यह होता है कि यह परम वर्ण है इससे उत्तम दूसरा वर्ण नहीं है।'

'उदाई! यह सर्वोत्तम प्रणीततर वर्ण कौन सा है जिससे श्रेष्ठ कुछ नहीं है?'

'भंते! जिस वर्ण से उत्तम और कोई वर्ण न हो वही सर्वोत्तम वर्ण है।

'उदाई। जैसे कोई व्यक्ति कहे कि वह देश / जनपद की जनपद कल्याणी से भी अधिक सुंदर स्त्री को चाहता हूँ और वह उस स्त्री का नाम पता कुछ न बता पाए। तो उसका कथन अप्रमाणिक होगा या नहीं?

'भंते! अप्रमाणिक होगा।'

'उदाई! इसी प्रकार आप सर्वोत्तम वर्ण जिससे प्रणीततर कोई वर्ण नहीं है की बात करते हैं परन्तु वह प्रणीततर वर्ण कौन-सा है यह बता नहीं पा रहे हैं।'

'जैसे भंते! उत्तम शुभ्र कोटि की वैदूर्य मणि अर्थात हीरा एक उत्तम लाल दुशाले में रखी हो और वह अपने सर्वोत्तम प्रकार से दिख रही हो। मृत्यु के बाद आत्मा भी इसी प्रकार भासित होती है। यह सर्वोत्तम वर्ण है। इसमें भी सुंदर वर्ण की बात मैं करता हूँ।'

'तो उदायी आपका क्या मानना है। रात में जुगनू अधिक चमकीला दिखता है या हीरा।'

'भंते। जुगनू कीड़ा।

'रात के अंधकार में जुगनू का प्रकाश अधिक होता है या तेल के दीपक का?'

'भंते! तेल के दीपक का।'

'रात में तेल का दीपक अधिक चमकीला होता है या बहुत बड़ी आग का ढेर!'

'भंते! आग का ढेर।'

'रात में आग का ढेर अधिक प्रकाशित होता है या शुकृ तारा?'

'भंते! आग का देर तो कुछ दूरी तक ही दिखाई देता है और शुक्रतारा तो पूरे विश्व में दिखाई पड़ता है।

'मेघ रहित स्वच्छ आकाश में रात्रि को शुक तारा अधिक प्रकाश देता है या चंद्रमा?'

'भंते! चंद्रमा।'

'चंद्रमा और सूरज में कौन अधिक तेजवान है?'

''भंते! सूरज अधिक तेजवान है।''

''इस तरह उदाई तुम तो सबसे कम प्रकाशित हीरे की महिमा प्रणीततर रूप में बता रहे हो, इससे अधिक प्रणीततर तो इतनी चीजें हैं?

''भंते! हमारे मत में तो यही माना जाता है इस तरह हम आपके सम्मुख वार्ता करने में अक्षम हैं।''

''क्या मानते हैं उदाई! कोई एकांत सुख वाला लोक है यदि है तो वहां का रास्ता क्या है?''

''है भंते! जैसा आपने बताया है कि प्राणी हिंसा से विरत रहना, झूठ न बोलना, चोरी न करना व्याभिचार से दूर रहना ही एकांत सुख का रास्ता है''

''बहुत अच्छा उदाई! यह बताओ जिस समय व्यक्ति प्राणिहिंसा से पृथक रहता है उस समय केवल सुख का अनुभव करता है या सुख दुख दोनो का अनुभव करता है।''

''भंते! सुख दुख दोनो का अनुभव करता है।''

''इसी तरह अदत्तदान से मुक्त होने पर काम व्याभिचार, मिथ्याचार से विरत होने पर, मृषावाद से विरत होने पर व्यक्ति केवल दु:ख या केवल सुख का अनुभव करता है या मिश्रित सुख दुख दोनो का।''

''सुख दुख दोना का मिश्रित अनुभव करता है।''

''इसी प्रकार उदाई ! सुख दु:ख दोनो के मिश्रित मार्ग से एकांत सुख वाले लोक अर्थात शांति का साक्षात्कार होता है। यही सुख दुख मिश्रित मार्ग ही अष्टांग मार्ग है जो शांति और कल्याण की ओर ले जाता है। जैसे सम्यक दृष्टि अर्थात न अधिक तीखी न अधिक सरल, सुख दु:ख मिश्रित दृष्टि, सम्यक आजीव अर्थात ऐसी आजीविका जो अतिओं से पृथक हो जिससे सभी का यदि नुक्सान न हो पाना संभव न हो पाए तो कम से कम लोगों का नुकसान हो, ऐसा भी न हो कि परिवार भूखा मर जाए। यही सुख दु:ख मिश्रित मध्यमार्ग है जो अष्टांगमार्ग के पालन से प्राप्त होता है।''

''भगवान बुद्ध के ऐसा कहने पर सकुल उदाई की परिषद कोलाहल करने लगी कि ऐसे तो हम उत्तमतम वर्ण से वंचित हो जाएंगे।''

उदाई ने उन सबको शांत करते हुए कहा कि ''इससे प्रणीततर कुछ भी नही है। मुझ सहित आप सब भगवान से उपसम्पदा पाएं और भगवान के सानिध्य में ब्रह्चर्य वास करें।''

इस प्रकार सकुल उदाई और उसकी परिषद ने भगवान के सुभाषित का अभिनंदन किया।

*****

31. कणत्तथलक सूत्र

इस सूत्र में काशिराज प्रसेनजित से हुए संवाद में भगवान बुद्ध के द्वारा वर्ण व्यवस्था में दी हुई पवित्रता का खंडन करते हुए ब्रह्म, स्वर्ग, नरक आदि काल्पनिक तथ्यों का खंडन कर सम्यक् दृष्टि का उपदेश दिया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक बार भगवान बुद्ध उजुक्का के कणत्तथलक (कर्ण स्थलक) मृगदाव में विहार करते थे। उस समय राजा प्रसेनजित उजुक्का आए हुए थे। उन्होंने अपना दूत भेजकर भगवान के श्री चरणों मे प्रणाम किया और कहलवाया कि वह भगवान के दर्शन करना चाहते हैं कृपया अनुमति देने की कृपा करे। महाराज प्रसेनजित की मुलाकात भगवान से हुई। यथायोग्य स्वागत सम्बोधन कुशलक्षेम के उपरांत महाराज ने प्रच्छा की।

'भंते! मैंने यह सुना है कि आप का कथन है कि ब्राह्मण या श्रमण सर्वज्ञानी होते हैं? क्या यह सम्भव है कि कोई ब्राह्मण श्रमण सर्वदर्शी या सर्वज्ञानी हो? क्या यह सत्य है?'

'महाराज! यह सत्य नहीं है।

महाराज यह सत्य नहीं है कि कोई भी ब्राह्मण श्रमण सर्वज्ञानी हो।'

'भंते! ऐसा ब्राह्मण श्रमण नहीं है जो सब जानेगा। भंते! यह चार वर्ण हैं क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इनमें कोई भेद या नानकरण है या नहीं?'

'महाराज! इन चार वर्णों में अभिवादन प्रत्युत्थान समीचि कर्म में दो अग्र वर्ण श्रेष्ठ माने गए हैं परंतु श्रेष्ठ हैं नहीं। सभी का रक्त, रंग, रूप में कोई भिन्नता नहीं है। जो भिन्नता है वह कुटिलता से बनाई हुई है और यह उचित नहीं है।

'भंते! मैं इस जन्म के बारे में नहीं परलोक के सम्बंध में पूछना चाहता हूँ कि इनमें कोई भिन्नता है या नहीं?'

'महाराज, श्रेष्ठ होने के लिए यह पाँच प्रधानीय अंग हैं जो मनुष्य में होने चाहिए-

1. व्यक्ति श्रद्धालु होना चाहिए,
2. निरोगी और अल्पबाधा होना चाहिए,
3. अ शठ होना चाहिए,
4. उद्योगशील होना चाहिए और
5. प्रज्ञावान होना चाहिए।

महाराज, यह प्रधानीय अंग हैं जो भी वर्ण इन अंगों से युक्त होते हैं वह उनके लिए दीर्घकाल तक सुखकर व हितकर होता है।'

'भंते! यह चार वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र यदि यह पाँचों प्रधानीय

अंगों से युक्त हों तो क्या भंते! उनमें कोई नानकरण या भेद नहीं होगा?'

'महाराज, आप ही बताओ दो दमनीय (बिना सिखलाए हुए) हाथी, दो दमनीय घोड़े और दो सुदंत (प्रशिक्षित) हाथी या घोड़े हैं तो क्या वह प्रक्षिशित होने से सुदंत पद को प्राप्त होते हैं।'

'हाँ भंते!'

'और क्या जो सुदंत है वह क्या बिना प्रशिक्षण के ही सुदंत पद को प्राप्त होते हैं?'

'नहीं भंते!'

'ऐसे ही महाराज! जो पाँचों प्रधानीय अंगों से युक्त हैं और जो इनसे दूर हैं तो क्या वह सब बराबर हैं।'

'नहीं भंते! आपने ठीक कहा चारों वर्ण यदि प्रधानीय अंगों वाले हों तो उनमें कोई भेद नहीं होगा।'

'महाराज! यदि कोई व्यक्ति सूखी घास से अग्नि जलाए, दूसरा व्यक्ति गूलर की लकड़ी से आग जलाए, तीसरा व्यक्ति साल की लकड़ी से आग तैयार करे तो क्या मानते हैं महाराज! इन चारों काष्ठों से प्रादुर्भूत अग्नि की आभा में या लौ में कोई अंतर होगा।'

'नहीं भंते।'

'ऐसे ही महाराज व्यक्ति के तेज और विमुक्ति में कोई फर्क नहीं होता।' महाराज प्रसेनजित के सेनापति एवं पुत्र विड़ूडभ ने प्रश्न किया-

'भंते! क्या मनुष्यों से पृथक देवताओं का अस्तित्व है?' आयुष्मान आनंद को ऐसा लगा कि जब राजा प्रसेनजित के पुत्र प्रश्न कर रहे हैं तो भगवान की ओर से मुझे उत्तर देना चाहिए। आयुष्मान आनंद बोले-

'महाराज! क्या इन देवताओं जिनकी बात आप कर रहे हैं आपने देखा है या किसी समय इनकी उपस्थिति संज्ञानित की है?'

'नहीं भंते।'

'फिर तो आपने अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं दे दिया।'

'भंते! क्या स्वर्ग या नरक या देवलोक जैसा कोई स्थान इस धरती के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है?'

'चलो मान लिया ऐसा स्थान है तो क्या वहाँ से किसी को हटाया या भेजा जा सकता होगा। आप ही बताओ महाराज! अपने राज्य क्षेत्र में क्या आप किसी को दंडित कर सकते हैं या बाहर निकल सकते हैं।'

'हाँ भंते।'

'परंतु यही काम क्या आप उस क्षेत्र में भी कर सकते हैं, जहाँ आपका अधिपत्य नहीं है?'

'नहीं भंते।'

'ऐसे ही महाराज! जिस पर हमारा या किसी का अधिपत्य नहीं है और हम कोई भी कार्यवाई नहीं कर सकते वैसी जगह का क्या अस्तित्व है? अर्थात कोई अस्तित्व नहीं है?'

'भंते यह कौन आयुष्मान हैं?'

'यह आयुष्मान आनंद हैं।'

'ओ हो! आयुष्मान आनंद हैं? आनंदरूप हैं आनंद ठीक कहते हैं।'

'भंते! क्या ब्रह्म हैं अर्थात ब्रह्म नाम का कोई देवता अस्तित्व में है?'

'क्या ब्रह्म मनुष्य लोक में निवास करते हैं या कहीं अन्यत्र?'

'भंते! मनुष्य लोक में नहीं वह देवलोक में निवास करते हैं ऐसे हमारा मानना है। हम यह आपसे यथार्थ जानना चाहते हैं कि क्या वास्तव में ब्रह्म का अस्तित्व है या नहीं?'

'महाराज! नहीं यह केवल पुराणों में लिखी हुई गप्प है क्योंकि ऐसे किसी ब्रह्म का कोई आतित्व मुझे संज्ञानित नहीं है और कभी इस ब्रह्म ने कोई कार्य किया हो। ऐसा भी मुझे संज्ञानित नहीं है।'

तभी एक दूत ने खबर दी कि महाराज महल चलने का समय हो गया है। महाराज प्रसेनज़ित बोले–

'भंते! हमने आपके दर्शन किए ब्राह्मणों श्रमणों की सर्वज्ञता पूछी, चारों वर्णों की शुद्धता पूछी। देवता के बारे में पूछा, ब्रह्म के विषय में पूछा। भगवान ने जो बतलाया वह मुझे बहुत अच्छा और तर्कसंगत लगा। हम उससे संतुष्ट हैं। भंते अब हम जाएँगे यह कहकर महाराज प्रसेनजित ने भगवान की प्रदक्षिणा की और वापस चले गए।

*****

32. उद्देश्यविभंग सूत्र

भगवान बुद्ध के द्वारा इस उपदेश में छहो आयतन या इंद्रियों पर नियंत्रण रखने के लिए प्रविधि सुझाई गई है और यह बताया गया है कि हमें अपनी दैनिक गतिविधियों का निरंतर परीक्षण करते रहना चाहिए और यह देखते रहना चाहिए कि इंद्रियों का कोई संयोजन मन मस्तिष्क पर हावी तो नहीं हो रहा है। यदि ऐसा लगता है कि कोई संयोजन हावी हो रहा है तो परीक्षण कर उसे हटाना चाहिए। जैसे-जैसे वह परीक्षण और उप-परीक्षण करता जाता है उसके संयोजन नष्ट होते जाते हैं और इस तरह दुखों का कारण भी नष्ट होता जाता है।

ऐसा मैंने सुना-

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित किया-

'भिक्षुओ! आज मैं उद्देश्यविभंग सूत्र का उपदेश करता हूँ। ध्यानपूर्वक धारण करो। वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिए जैसे-जैसे परीक्षण करने से व्यक्ति का विज्ञान बाहर विसृष्ट न हो और अध्यात्म भी संत्रासित न हो। विज्ञान के बाहर विसृष्ट न होने से और अपने अंदर संस्थित न होने से दुखों का विनाश हो जाता है।' भगवान ने यह कहा और उठकर विहार में चले गए। उनके जाने बाद भिक्षुओ ने विचार किया कि भगवान तो इस सूत्र को बिना विभाजित किए ही विहार में चले गए हैं। अब इसको विभाजित कौन करेगा? सभी विद्वान भिक्षुओ ने सामूहिक रूप से निर्णय लिया और यह पाया कि आयुष्मान महाकात्यायन ही भगवान के इस सूत्र का विभाजन कर सकते हैं। आयुष्मान महाकात्यायन उस समय वहीं पर मौजूद थे। उन्होंने इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार की।

'आयुष्मानों जब आँखों से कोई वस्तु देखी जाती है तो व्यक्ति का दिमाग (जिसे भगवान के द्वारा विज्ञान के नाम से बताया गया है) उस देखी गई वस्तु की आभा या सुंदरता को अपने मन में बैठा लेता है और उसे पाने की इच्छा करने लगता है या इसके विपरीत अप्रिय लगने पर उससे दूर भागने का प्रयास करता है। वस्तु की आभा या प्रभाव से बंधे दिमाग के इस संयोजन (बंधन) से बाहर आना ही अविसृष्ट होना कहा जाता है। इसी प्रकार वस्तु के प्रभाव से मन को प्रभावित न होने देना ही अध्यात्म को संत्रासित न होने देना कहलाता है। यह तो एक उदाहरण है आँखों से देखी हुई वस्तु का। इसी प्रकार जिह्वा से रस के बारे में, कर्ण से उत्तम या अप्रिय शब्द, घ्राण से गंध के बारे में, काया से स्पर्श के बारे में और मन से धम्म के बारे में उत्तम या प्रणीततर की आभा या प्रभाव से बंधे मन व दिमाग के इस संयोजन से बाहर आना असृष्ट होना कहलाता है। और इसी तरह मन से वस्तु विशेष को स्वीकार न करना आध्यात्मिक रूप से संत्रासित न होना कहलाता है। इस प्रकार छहों आयतनों के सम्बंध में जैसे-जैसे व्यक्ति परीक्षण करता है कि वह कहाँ-कहाँ से इन छहों आयतनों के संयोजन से

सम्बद्ध है और कितने संयोजनों से पृथक हुआ है अर्थात अविसृष्ट हुआ है। वह शांति को प्राप्त करता जाता है। उसके लिए दु:ख का कोई कारण नहीं रह जाता है।

आयुष्मानों मैं भगवान के द्वारा विभाजित इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार जानता हूँ। अच्छा हो आयुष्मानों तुम भी जब मौका पाओ भगवान से अवश्य पूछना। अवसर पाकर भिक्षुओ ने भगवान से सारी कथा कह सुनाई। उनका आयुष्मान महाकात्यायन से हुआ वार्तालाप सुनकर भगवान ने कहा यदि मैंने भी इसका विभाजन किया होता तो ऐसा ही करता।

सभी ने संतुष्ट हो भगवान के भाषण का अभिनंदन किया।

*****

33. महागोसिंग सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध एवं उनके प्रधान शिष्यों के द्वारा गोसिंग नामक सालवन को लेकर भविष्य में धर्म के स्वरूप की चर्चा की गई हैं। इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा विपश्यना को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए इसके माध्यम से मन पर नियंत्रण को सर्वोपरि बताया गया है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध सालवन में (गाय के सींग की आकृति होने के कारण इसका नाम गोसिंग वन पड़ा था) अनेक थेर भिक्षुओ के साथ विहार करते थे। इनमें महाकश्यप, मोदगल्यायन, अनुरुद्ध, रेवत और आनंद शामिल थे। यह सभी भिक्षु भगवान को अपने बीच पाकर प्रफुल्लित थे। भगवान बुद्ध अभी हाल में ही वहाँ आए थे और वह सब काफी समय से उस सालवन में शांतिपूर्वक विहार कर रहे थे। एक दिन धर्म चर्चा के दौरान यह बात उठी कि भविष्य में यह सालवन किस तरह के भिक्षुओ से सुशोभित होगा। इस पर भगवान के उपस्थाक आयुष्मान आनंद ने भगवान से अनुमति प्राप्त कर सबसे पहले कहा–

'भगवान! भविष्य में यह सालवन अनुश्रुत कथाओं के संचय करने वाले और उसका वाचन करने वाले भिक्षुओ से सुशोभित होगा। यह धर्म जो प्रारम्भ, मध्य में व अंत में कल्याणकारी है, के उपदेशों के श्रवण के लिए आने वाले भिक्षुओ और उनका वाचन करने वाले थेर भिक्षुओ के सस्वर पाठों से सुशोभित होगा।; आयुष्मान रेवत ने बताया कि भविष्य में यह सालवन ध्यानरत रहने वाले और विपश्यना के साधक प्रखर भिक्षुओ से सुशोभित होगा।

इसी प्रकार आयुष्मान महाकश्यप ने बताया कि यह सालवन भविष्य में भिक्षा पर आश्रित रहने वाले, आरण्यक वनवासी जीवन जीने वाले त्रैचीवरिक (एक समय में केवल तीन चीवर या वस्त्र रखने करने वाले) अल्पेक्षु, चिंतनरत, उद्योगशील, अप्रमादी, प्रज्ञायुक्त, विमुक्ति के ज्ञान दर्शन को जानने वाले भिक्षुओ का आश्रय स्थल होगा। इसी क्रम में मौद्गल्यायन के द्वारा बताया गया कि भविष्य में यह वन ऐसे भिक्षुओ से परिपूर्ण होगा जो आपस में शांतिपूर्वक अभिधर्म की वार्ता करें एक दूसरे के प्रश्नों का शांति, तर्क एवं प्रज्ञायुक्त उत्तर दें। कठोर वचन न कहें। उनकी धर्म कथा अविरल रहे। ऐसे भिक्षुओ से यह सालवन सुशोभित होगा। आयुष्मान शारिपुत्र के द्वारा बताया गया कि यह सालवन ऐसे भिक्षुओ से परिपूर्ण होगा जो अपने मन को वश में रखते हों और मन के वश में न रहते हों ठीक उसी प्रकार जैसे भगवान दोपहर के बाद केवल जल का सेवन ही करते हैं। भले ही सामने कितने ही स्वादिष्ट भोजन रखे हो परंतु वह अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखते हैं। आने वाले समय में यह सालवन अपने मन को नियंत्रित रखने वाले भिक्षुओ से परिपूर्ण होगा। भिक्षुओ के इस कथा

संलाप को भगवान से सुना और कहा –

'भिक्षुओ ! तुम लोगों ने अपना सुभाषित कह लिया या अभी कुछ शेष है।'

'भगवान ! हम लोगों ने अपनी बात पूरी कर ली अब आप हमें उपदेश दें।'

'भिक्षुओ ! यह सालवन भविष्य में ऐसे भिक्षुओं और गृहपतियों से सुशोभित होगा जो भोजन और विश्राम के उपरांत काया को सीधा कर आसान मार कर स्मृति को सामने रख विपश्यना करते होंगे तथा यह संकल्प करते होंगे कि मैं इस आसन को तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक अपने मन पर मेरा पूर्ण नियंत्रण नहीं हो जाता और कुविचार मेरे मन को पूरी तरह छोड़ नहीं देते। आयुष्मानों ! भविष्य में यह सालवन ऐसे भिक्षुओं और गृहपतियों से सुशोभित होगा।'

भगवान के इस सुभाषित से संतुष्ट हो सभी आयुष्मानों ने भगवान का अभिनंदन किया।

*****

34. महागोपाल सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा यह बताया गया है कि श्रद्धावान व्यक्तियों, भिक्षुओ एवं श्रमणों में 11 बातों का होना धर्म की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। इन बातों को समझाने के लिए उन्होंने गोपालकों में पाए जाने वाले गुणों का सहारा लिया है जो गोपालकों में होना गोसंवर्धन के लिए अति आवश्यक होता है। उसी तरह धर्म विनय की वृद्धि के लिए श्रमणों, गृहस्थों और भिक्षुओ में इन गुणों का होना आवश्यक है।

ऐसा मैंने सुना–

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन में विहार करते थे। एक दिन उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया–

'भिक्षुओ! इन 11 बातों को जानने वाले गोपालक अपने गोष्ठ को बचाने और उनकी संवृद्धि में सफल होता है और इसके विपरीत जो गोपालक इन बातों को नहीं जानता उसका गोवंश वृद्धि नहीं कर पाता है और कम होने लगता है। क्षरण को प्राप्त होने लगता है।'

1. गोवंश के अच्छे वर्ण या रूप को जानने वाला होता है अर्थात उसे दुधारू और भारवाही गोवंश की पहचान होती है।
2. उत्तम गायों के लक्षण जानने में प्रवीण होता है।
3. काली मक्खियों को हटाने वाला होता है।
4. गोवंश के घाव को ढकने वाला होता है।
5. गोवंश को मक्खी–मच्छर से बचाने के लिए प्रतिदिन धूम्र करता है।
6. नदी, तालाब एवं अन्य पुष्करिणियों के पानी पीने योग्य घाटों को जानता है।
7. गोवंश को कहाँ अच्छा पानी मिल सकता है, उसे भली प्रकार जानता है।
8. चरागाहों को जाने वाले अच्छे रास्तों का जानकार होता है।
9. अच्छे चरागाहों का जानकार होता है।
10. गायों को दुहते समय बछड़े के लिए पर्याप्त दूध छोड़ देता है और
11. वृद्ध गोवंश को यथोचित भोजनादि की व्यवस्था करता है।

इन 11 बातों से रिक्त गोपालक गोवंश के यूथ की रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! जो भिक्षु इन बातों का जानकार नहीं होते, उनसे धर्म की हानि ही होती है वृद्धि नहीं। जिस तरह गोपालक अच्छे गोवंश की पहचान करने के लिए उसके रंग और आकार को नहीं पहचानते हैं वैसे ही जो भिक्षु रूप को निर्मित करने वाले चार महाभूतों को पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को भली प्रकार नहीं जानता उसमें ही आसक्त रहता है। वह रूप को जानने वाला नहीं होता है। ऐसा भिक्षु धर्म में वृद्धि नहीं कर पाता है।

जिस तरह से अयोग्य गोपालक उत्तम गायों के लक्षण को भली प्रकार नहीं जानता उसी प्रकार योग्य भिक्षु के लक्षणों को भली प्रकार न जानने वाला भिक्षु गलत भिक्षुओं का साथ कर लेता है, जिससे धर्म की हानि होती है। भिक्षुओ! काली मक्खियों को काम वासना के समान माना गया है। जिस प्रकार जो अयोग्य गोपालक काली मक्खियों को नहीं हटाता और गोवंश मक्खियों के कारण फैलने वाली बीमारी का शिकार हो जाता है, उसी तरह काम वासना पर नियंत्रण नहीं करने वाला भिक्षु स्वयं और अपने समूह की हानि करता है।

जो भिक्षु तथ्यों की गहराई में नहीं जाकर केवल ऊपर से ही देखकर किसी बात पर विश्वास कर लेता है। वह उसी तरह होता है जैसे अज्ञ और अनाड़ी व्यक्ति राग, द्वेष, मोह लालच आदि में पड़ जाता है और इससे अपने ही धर्म की हानि कर लेता है। इससे धर्म और संघ वैसे ही नुकसान उठाता है जैसे जो गोपालक घाव को ढंकने वाला नहीं होता। घाव के न ढंकने से और उसमें दवा न लगाने से जिस प्रकार मक्खियाँ घाव में अंडे देकर उसे खराब कर देती हैं एवं घाँव में शीघ्र ही कीटाणु पड़ जाते हैं जिससे गोवंश क्षति को प्राप्त होता है।

'जिस प्रकार गोपालकों के लिए यह अनिवार्य है कि सायं को वह धूम्र उत्पन्न कर गोवंश को मक्खी और मच्छर तथा अन्य हानिप्रद सूक्ष्म जीवों से बचावे उसी प्रकार भिक्षु के लिए यह अनिवार्य है कि धर्म के प्रचार के लिए सायंकाल में सभा करे या सभा में जाकर धर्म श्रवण करें या धर्म का वाद करें। जैसे धूम्र करने से छोटे और हानिप्रद जीव नष्ट होते हैं वैसे ही धर्म, वाद और धर्म श्रवण से धर्म के सम्बंध की छोटी-छोटी भ्रांतियाँ नष्ट होती हैं और ऐसा न करने से भ्रांतियाँ बनी रहती हैं और धर्म की हानि होती है।

भिक्षुओ! तुम्हें धम्म के विद्वानों के बारे में जानकारी होनी चाहिए। विद्वानों के बारे में जानकारी ठीक उसी प्रकार है, जैसे गोपालकों को गाँव और चरागाहों के मार्गों के बारे में। जिस गोपालक को यह जानकारी नहीं होती है, वह अपने गोवंश को अच्छी घास नहीं खिला सकता। वैसे ही यदि तुम्हें धर्म के विद्वानों की जानकारी नहीं होती तो यह धर्म के लिए उन्नतिकारी नहीं होगा।

भिक्षुओ तुम्हें धम्म को मन लगाकर, ध्यान लगाकर सुनना चाहिए। मन लगाकर धर्म श्रवण, पान (पेय) की तरह होता है, जिस तरह गोवंश उत्तम और मीठे जल का अत्यंत आतुरता और स्वाद के साथ पीते हैं वैसे ही तुम्हें धर्म तथा श्रवण के पान में आतुर होना चाहिए। धम्म श्रवण में आनंद और स्वाद मिलना चाहिए, तभी धम्म की उन्नति है।

जिस प्रकार गोपालक के लिए वीथी / गाँव के रास्तों को जानना आवश्यक है, जिससे वह गोवंश को उत्तम चरागाहों तक पहुँचा सके। उसी तरह भिक्षुओ को अष्टांग मार्ग का ज्ञान आवश्यक है। यह धम्म के लिए भोजन को प्राप्त करने के मार्ग के समान है। जो भिक्षु चारों स्मृति प्रस्थानों को नहीं जानता वह उसी तरह है जैसे गोपालक को चरागाह का ज्ञान न होना। गोपालकों के लिए चरागाह का ज्ञान जितना अनिवार्य है, उसी तरह भिक्षुओं के लिए विपश्यना और चारों स्मृति प्रस्थानों का ज्ञान होना आवश्यक नहीं वरन अनिवार्य है।

'भिक्षुओ! गृहस्थों के लिए आवश्यक है कि वह अपने जीविकोपार्जन के लिए उत्पादित अंश में से कुछ अंश भिक्षुओ के लिए भिक्षा आदि के लिए छोड़ रखे, जिस प्रकार योग्य गोपालक गाय को दुहते समय बछड़े के लिए आवश्यक दूध छोड़ देता है। यदि वह बछड़े के लिए आवश्यक दूध नहीं छोड़ता तो यह गोवंश के लिए हानिप्रद होता है। वैसे ही

यदि श्रद्धालु धम्म के लिए कुछ अंश नहीं छोड़ते हैं तो वह धम्म और स्वयं उनके लिए भी सुखकर नहीं होता।

जिस प्रकार भिक्षुओ! योग्य गोपालक वृद्ध वृषभों की अवहेलना नहीं करता, उनकी भी सेवा करता है। उसी तरह थेर और वृद्ध भिक्षुओ को जो भिक्षु या गृहपति उचित सम्मान देते हैं तो उनकी उन्नति होती है। जैसे जब गोवंश को नदी पार करनी होती है और बीमार गोवंश की सुश्रुषा करनी होती है तो यह वृद्ध या वरिष्ठ गोवंश इसमें सहायक होते हैं। भिक्षुओ! वृद्ध वृषभों, गायों को यह पता होता है कि कहाँ से नदी पार करना सुगम होगा या पथ्य-अपथ्य के रूप में कौन सी घास खाद्य नहीं है? इन सबके लिए वृद्ध गोवंश, युवा गायों की सहायता करता है अत: जो गोपालक अपने वृद्ध गोवंश को उचित भोजन आदि देकर बचाए रखते हैं उन्हें जंगल में, चरागाह में और जंगली पशुओं से अपने गोवंश को बचाने में समस्या नहीं आती है। उसी तरह जो गृहपति और युवा भिक्षु अपने वृद्ध भिक्षुओ को सम्मान देते हैं। वह कभी विपति में नहीं पड़ते। इसके विपरीत जिस गोपालक के पास वृद्ध गोवंश नहीं होता उसका गोवंश ऐसी समस्या में फंस सकता है। जो उसने सोची भी नहीं होती है जैसे जंगली जानवरों के आक्रमण पर गोवंश को बचाना। वैसे ही जहाँ वृद्ध भिक्षु रहते हैं वहाँ जनसमुदाय विपत्तियों से बचा रहता है।

इसके उल्टे जो भिक्षु अयोग्य गोपालकों की तरह इन उपरोक्त 11 बातों का ध्यान नहीं रखते हैं उनका संघ और धम्म प्रगति नहीं कर पाता है। अवनति तथा अपयश को प्राप्त होता है।'

भगवान के सुभाषित से संतुष्ट हो सभी उपस्थित भिक्षुओ ने सम्भाषण का अभिनंदन किया।

*****

35. चुल्लगोपाल सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध ने मूर्ख और बुद्धिमान गोपालकों का उदाहरण देकर यह बताया है कि हमें हमेशा सोच-समझ कर पिछले अनुभवों से लाभ उठाते हुए अपने वृद्धजनों की सलाह से अपनी प्रज्ञा के अनुसार ही निर्णय लेना चाहिए। गलत निर्णय से क्षति होती है और सही निर्णय से व्यक्ति सद्गति को प्राप्त होता है और इसमें व्यक्ति की बुद्धि तर्क और प्रज्ञा का स्थान सर्वोच्च है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध वज्जि जनपद के उल्काचेल (सम्भवत: हाजीपुर बिहार) में गंगा के किनारे विहार करते थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! पूर्वकाल में एक बार मगध के एक मूर्ख गोपालक ने वर्षाकाल के अंतिम माह में बिना सोचे-समझे गंगा नदी के दूसरे छोर को बिना जाने, बिना घाट के ही गायों को नदी के उस पार जाने के लिए हाँक दिया। चूँकि उसे घाट का पता नहीं था फिर भी उसने अनुमान से ही बिना जानकार व्यक्ति से पूछे यह मान कर गायों को हाँक दिया कि गाय तो तैरने में कुशल होती हैं। यह तैर कर पार आ जाएँगी। उसके इस कृत्य से कमजोर गोवंश रास्ते में घायल हो गया और क्षति को प्राप्त हुआ। ऐसी ही भिक्षुओ जो लोग आर्य धर्म नहीं जानते और यह नहीं जानते कि जीवन में दु:ख है, नहीं जानते दु:ख का कारण होता है, दु:ख का निवारण नहीं जानते और दु:ख निरोधगामी प्रतिपाद अर्थात अष्टांग मार्ग नहीं जानते वह निश्चित रूप से कष्ट को प्राप्त होते हैं।

इससे पृथक ठीक उसी तरह के मौसम मे जानकार गोपालक ने भली प्रकार समझ कर अपने वृद्धजनों से सलाह कर उस तरफ से गाएँ हाँकी जिस तरफ घाट बने थे और धारा के सापेक्ष जाने में आसानी थी। तो भी उस गोपालक ने सबसे पहले बलवान और पुष्ट उम्र वाले वृषभों को हाँका वह सब गंगा की धारा को तिरछे काट कर सुरक्षित निकल गए और उसके बाद दुधार और सूखी गायों को पार कराया और अंत में कमजोर तथा वृद्ध गोवंश को उसी रास्ते से पार कराया, इसी मे एक कुछ ही दिनों का जन्मा बछड़ा भी माँ की गर्दन के सहारे पार हो गया। ऐसे ही भिक्षुओ जो व्यक्ति सोच-समझ कर तथ्यों का भली प्रकार परीक्षण कर कार्य करता है वह सुखी होता है। ऐसे ही भिक्षुओ जो लोग आर्य धर्म को भली प्रकार जानते हैं कि जीवन में दु:ख है, यह जानते हैं कि यदि दु:ख है तो उसका कारण भी होगा और दु:ख के कारण का पता लग जाए तो भिक्षुओ! उस कारण को समाप्त कर दें, नष्ट कर दें तो दु:खो का निवारण हो जाएगा। और दु:खों के निवारण का मार्ग मध्यम मार्ग है जिसे मैं अष्टांग मार्ग कहता हूँ। विज्ञ जन योग्य गोपालक की तरह आर्य धर्म को जानते है। दु:ख निरोधागामी प्रतिपदा को जानते हैं। अष्टांग मार्ग को जानते हैं, विपश्यना जो अष्टांग मार्ग का अंग है उसे जानते है। तो ऐसे व्यक्तियों का हित होगा कल्याण होगा।'

समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने भगवान के सुभाषित को सुनकर संतुष्ट हो अभिभाषण का अभिनंदन किया।

*****

36. चुल्लसच्चक् सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा सच्चक् नामक जैन संन्यासी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए शारीरिक और मानसिक साधना की विधि बताई गई है। इस सूत्र में उन्होंने जैन परम्परा के काया क्लेश (शारीरिक एवं मानसिक पीड़न) को व्यर्थ बताकर वास्तविक शारीरिक और मानसिक तपश्चर्या को बताया है। सांसारिक भोगों से पृथक रहना और उनसे निर्लिप्तता ही सर्वोत्तम शारीरिक और मानसिक साधना है।

ऐसा मैंने सुना-

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के महावन में स्थित कूटागारशाला में विहार करते थे। इस समय वैशाली में सच्चक् (सत्यक) नाम के एक जैन संन्यासी भी रहा करते थे। एक दिन आयुष्मान आनंद को सच्चक् उनके विहार के आस- पास टहलते दिखाई पड़े। उन्होंने भगवान से कहा कि कृपया थोड़े समय के लिए यहाँ ठहर जाएँ। अभी सच्चक् यहीं आस-पास हैं, आपको बैठा हुआ देखेंगे तो अवश्य ही आएँगे। यह बहुत वाचाल हैं और संघ की निंदा भी करते रहते हैं। अच्छा हो कि आपका उनसे कथा संलाप हो, शास्त्रार्थ हो। जैसा आयुष्मान आनंद ने कहा था, वैसा ही हुआ। थोड़ी ही देर में सच्चक् टहलते हुए वहाँ आए। भगवान का वहाँ देखा तो सच्चक् वहीं रूक गए और यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के उपरांत उनकी वार्ता प्रारम्भ हो गई।

'गौतम!' कतिपय ब्राह्मण श्रमण शारीरिक तपस्या में ही लगे रहते हैं और शरीर को कष्ट देना ही सबसे बड़ी तपस्या मानते हैं। काया क्लेश से शरीर को कष्ट पहुँचता है, शरीर को कष्ट पहुँचने से दिमाग को भी कष्ट पहुँचता है आखिर दिमाग भी शरीर का ही तो हिस्सा है। मस्तिष्क को कष्ट पहुँचना मानसिक काया क्लेश है। कतिपय संन्यासी न बोलने का व्रत लिए रहते हैं। ऐसा व्रत कि उन्हें कुछ भी करो वह प्रतिक्रिया ही नहीं देते हैं। उनकी इस प्रकार की तपश्चर्या भी शरीर को भी कष्ट पंहुचाती है। यह मानसिक के साथ - साथ शारीरिक तपस्या भी है अत: मानसिक तपश्चर्या और शारीरिक तपश्चर्या अलग-अलग नहीं है वरन एक ही है। आप भी तो अपने शिष्यों को मानसिक तपश्चर्या की ही शिक्षा देते हैं।"

'अग्निवेश! क्या आपने शारीरिक तपश्चर्या सुनी है?'

'गौतम! जिस तरह से नंद, वात्स्य, मक्खलि गोशाल शारीरिक तपश्चर्या मानते हैं, वैसा मैं भी मानता हूँ। यह तपस्वी दिन में एक बार, कभी-कभी तो सप्ताह में एक बार ही भोजन ग्रहण करते हैं। कभी-कभी तो पक्ष में एक बार ही भोजन ग्रहण करते हैं। इस तरह वह शारीरिक तपश्चर्या करते हैं।'

'अग्निवेश! क्या वह केवल उतने से ही जीवन का पोषण करते हैं और हमेशा ही यही करते रहते हैं?'

'नहीं गौतम !' यह तपश्चर्या तो वह केवल कुछ समय के लिए ही करते हैं बाकी समय तो वह उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं। शरीर को पुष्ट और बलवान बनाते हैं। सभी प्रकार के ऐश्वर्य साधनों का भरपूर उपयोग करते हैं।'

''अग्निवेश! आपके अनुसार चित्त भावना (मन का अभ्यास) किस तरह की होती है?

इस पर सच्चक् कुछ बोल नहीं सके। सच्चक् के इस प्रकार काफी समय तक चुप रहने पर भगवान पुनः बोले-

'अग्निवेश! जिसे आपने शारीरिक तपश्चर्या बतलाई है, वह वास्तव में आर्य धर्म के अनुसार तपश्चर्या है ही नहीं? जब अपने शारीरिक तपश्चर्या को नहीं जाना तो मानसिक तपश्चर्या को क्या जानेंगे? किस प्रकार शारीरिक तपश्चर्या की साधना होती है और किस प्रकार मानसिक तपश्चर्या की साधना होती है और कैसे यह साधना नहीं होती है, का विवेचन करता हूँ। ध्यान से सुनें -

'अग्निवेश! जब कोई ऐसा व्यक्ति जिसने शारीरिक या मानसिक तपश्चर्या या साधना नहीं की होती है तो उसे जब सुख, धन, ऐश्वर्य प्राप्त होता है वह अत्यंत प्रसन्न होता है। उसका उपभोग करता है और वह उसका अभ्यस्त हो जाता है। अपने ऐश्वर्य साधनों में किसी प्रकार की थोड़ी सी कमी भी उसे किसी प्रकार सहन नहीं होती। वह उसमें कमी होता नहीं सहन कर पाता है और वह उस ऐश्वर्य संसाधन किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहता है। कालांतर में विपत्ति पड़ने पर किसी प्रकार यदि उसका सारा सुख, ऐश्वर्य नहीं रहता, समाप्त हो जाता है। वह धन-धान्य नहीं रहने की स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर पाता है। ऐसे में कई लोग हताशा - निराशा में अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेते हैं या दुःख से पागल हो जाते हैं। विक्षिप्त हो जाते हैं। अत्यंत दुःखी हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सुख और दुःख दोनों ही जकड़े रहता है। वह उससे पृथक् नहीं हो पाते हैं।'

इसके विपरीत जो व्यक्ति शारीरिक और मानसिक साधना में प्रणीत होते हैं वह सुख, ऐश्वर्य, धन-धान्य प्राप्त होने पर भी जीवन की अपनी सीमाओं को जानते हुए नियंत्रण में रहते हैं और केवल अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही संसाधनों का उपभोग करते हैं। उन्हें अधिक धन-धान्य वैभव से बहुत प्रसन्नता नहीं होती और इस प्रकार कालांतर में यदि वह किन्हीं कारणों से अपने वैभव और उत्कर्ष को बनाए नहीं रख पाते या उनका वैभव नष्ट हो जाता है तो उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। कोई दुःख नहीं होता। कोई दौर्मनस्य नहीं होता। इस तरह वह दोनों ही तरफ से सांसारिक सुखों-दुःखों से परेशान नहीं होता अर्थात वह उन सांसारिक तथ्यों से प्रभावित नहीं होता है। आपने सच्चक् अवश्य ही जान- बूझकर व्यंग्योक्ति के रूप में मुझे यह बात कही। बताएँ अग्निवेश! मैं राजपद छोड़कर केश श्मश्रु मुंडवाकर काषाय वस्त्र पहनकर संन्यासी बना हूँ तो यह सुख और दुःख की भावना मुझे या मेरे मन को क्या प्रभावित कर सकेगी?

'गौतम! क्या आपको वैसी सुखानुभूति या दुःखानुभूति नहीं होती जो आपके मन को बाँध सके।'

हमें क्या होगा अग्निवेश! यदि मुझे सांसारिक सुखों में आसक्ति होती तो मुझे इनकी क्या कमी थी। मैं राजपुत्र था। यदि मुझे इनमें आसक्ति होती तो मैं आज आपके सामने

क्यों होता? गृह का वास जंजाल है, प्रवृज्या खुला मैदान है। इससे भी अधिक मैंने शारीरिक साधना का अभ्यास किया है। अतिशय दु:ख वेदना का अभ्यास किया है, शरीर को अतिशय कष्ट दिया है। परंतु उससे कोई लाभ या सिद्धि प्राप्त नहीं होती और न ही काया क्लेश किसी काम का है।'

सच्चक् ने बात बदलते हुए कहा-

'गौतम! क्या आप दिन में सोते हैं?'

'हाँ अग्निवेश! गर्मियों में जब दिन लम्बा और रात्रि छोटी होती है तब मैं दिन में भोजन के उपरांत सम्पूर्ण सम्प्रजन्य युक्त हो दाहिनी करवट ले सिंह शैया लगाकर विश्राम करता हूँ।'

'परंतु गौतम! कतिपय ब्राह्मण श्रमण इसे मूर्खता कहते हैं।'

'इतने से कोई व्यक्ति मूढ़ या अमूढ़ नहीं होता अग्निवेश! जिससे व्यक्ति मूढ़ या अमूढ़ होता है। वह मैं बताता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो-

'जो व्यक्ति पुनर्जन्म में विश्वास करता है, जो व्यक्ति सांसारिक बंधनों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है, जिसका राग, द्वेष, लोभ, मोह आदि संक्लेश उसे जकड़े हुए हैं, उसे मैं मूढ़ कहता हूँ। मात्र दिन में सोने या न सोने से कोई मूढ़ या अमूढ़ नहीं हो जाता।'

'आश्चर्य हे गौतम! मेरे इतना चिढ़ा - चिढ़ा कर उकसाने के बावजूद आप वैसे ही प्रसन्न है जितना पहले थे। इसके पहले यह बातें जब मैं अन्य उपदेशकों जैसे मक्खलि, गोशाल, अजित केशकंबलिंन, पकुध कच्चायन, संजय वेल्ट्ठिपुत्त से कहता था तो थोड़े ही समय में यह बातों को घुमाने लगते थे नाराज़ होने लगते थे। बात को विषय से बाहर ले जाते थे परंतु आप तो पहले जैसे ही प्रसन्न हैं। अच्छा गौतम! अब हम चलते हैं।'

यह कह सच्चक् ने भगवान के भाषण का अभिनंदन किया और वहाँ से चले गये।

पाद टिप्पणी

1. सच्चक का यह कथन एक व्यंग्योक्ति था। वह यह कहना चाह रहे थे कि शारीरिक तपस्या और मानसिक तपस्या एक ही है और गौतम शारीरिक तपश्चर्या की ही शिक्षा देते हैं।

*****

37. महासच्चक सूत्र

इस सूत्र में जैन संन्यासी सच्चक से दूसरी बार शास्त्रार्थ किया गया और बताया गया कि शरीर में आत्मा नाम की कोई चीज नहीं होती है। सच्चक भगवान के तथ्यों का उत्तर नहीं दे सका और उनका शिष्य बन गया। सच्चक और भगवान बुद्ध का संवाद इस सूत्र की विषय वस्तु है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के महावन मे स्थित कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय वैशाली में सच्चक (सत्यक) नाम के जैन संन्यासी भी रहा करते थे। सच्चक वार्ता करने में कुशल और शास्त्रों के जानकार थे, सच्चक अपनी विद्धता के कारण बहुत लोगों के द्वारा पूजित एवं मान्यता प्राप्त थे। उनका भगवान बुद्ध से एक बार संवाद हो चुका था तथापि वह वैशाली की राज सभा में कहा करते थे कि मैं ऐसे किसी ब्राह्मण, श्रमण, संन्यासी गणपति, गृहपति, आचार्य संघपति स्वयं अपने को सम्यक संबुद्ध कहने वाले को नहीं देखता जो मुझसे शास्त्रार्थ कर सके। यदि मैं अचेता अवस्था में भी शास्त्रार्थ करूँ तो भी मुझे कोई हरा नहीं सकता।

एक दिन आयुष्मांन अश्वजित पूर्वान्ह के समय भिक्षाचार कर रहे थे। तभी उनकी मुलाकात सच्चक से हुई। सच्चक ने अश्वजित से पूछा कि आपके गुरू कौन हैं? और वह किस प्रकार की शिक्षा देते हैं उनसे कैसे मुलाकात हो सकती है? अश्वजित ने उत्तर दिया-

'मेरे शास्ता भगवान गौतम बुद्ध हैं, उनका कहना है कि रूप अनित्य है, वेदना, संस्कार, विज्ञान, समेत सारे तथ्य अनित्य हैं आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। भगवान गौतम बुद्ध इस समय महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे हैं।

यह सुनकर सच्चक वहाँ से सीधे संस्थागार पहुंचे, तत्समय वहाँ लिच्छवि गणप्रधान किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। सच्चक ने उन गणपतियों के सामने ही घोषणा की कि उनका गौतम के साथ का महावन की कूटागारशाला में वाद विवाद / शास्त्रार्थ होगा। मैं यह चाहता हूँ कि आपसब भी इस शास्त्रार्थ के प्रमाणक बनें। समस्त उपस्थित लिच्छवि प्रधानों को बहुत आश्चर्य हुआ कि यह कौन नये महागुरु महावन में आए हैं कि सच्चक् उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उनसे सच्चक् का शास्त्रार्थ बहुत रोचक होगा। अत: उन सबने नियत समय पर महावन की कूटागारशाला पहुँचने की तैयारी कर ली।

अलगे दिन सच्चक् अपने समस्त शिष्यों और लिच्छवि गण प्रधानों के साथ वहाँ पहुँचे और यथायोग्य स्वागत सम्बोधन के बाद सच्चक् और भगवान बुद्ध शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले सच्चक् ने भगवान से प्रश्न किया।

'हे गौतम ! आप अपने शिष्यों को क्या शिक्षा देते हैं?'

'अग्निवेश! मैं शिष्यों को बताता हूँ कि रूप अनित्य है, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनित्य हैं। सारे संस्कार अनित्य हैं अनात्म हैं।'

'हे गौतम! मुझे एक उपमा याद आती है, पृथ्वी का आधार लेकर ही बीज उगता है, सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है, उसी के विभव से सभी प्राणियों की पुष्टि होती है। यह कैसे सम्भव है कि यह सारी चीजें अनित्य हैं और नाशवान हैं। हमारा सारा संसार इन्हीं पर टिका है और आप कहते है कि यह सब अनित्य है।'

'अग्निवेश! क्या आपके कहने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार पृथ्वी मेरी है उसी तरह रूप, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान यह सब मेरे हैं यह मेरी आत्मा है।'

'गौतम! मैं क्या यहाँ उपस्थित सारा जन समूह यह कहता है कि रूप, वेदना, संज्ञा संस्कार मेरी आत्मा है।'

'अग्निवेश! उपस्थित जन समूह को छोड़ो। आप क्या कहते हो आप यह बताओ।'

'हाँ गौतम! मैं यह कहता हूँ।'

'तो अग्निवेश! मैं आपसे पूछता हूँ कि कोई मूर्धाभिषिक्त राजा क्या किसी भी व्यक्ति को पकड़वा सकता है, मरवा सकता है कारागार में डलवा सकता है।'

'मूर्धाभिषिक्त या सार्वभौम राजा के लिए यह कौन-सी बड़ी बात है। वह अपने अधिकार क्षेत्र में ऐसा बिल्कुल करवा सकता है।'

'अग्निवेश! यदि वह ऐसा कर सकता है तो आपका आपके शरीर पर क्या नियंत्रण है?' इस पर सच्चक् कुछ बोल नहीं सके।

पुन: भगवान बुद्ध ने पूछा अभी यह आपने कहा कि पृथ्वी मेरी है, यह रूप मेरा है, संज्ञा संस्कार, विज्ञान यह सब मै हूँ यह मेरी आत्मा है तो क्या आप वृद्ध होना चाहते हैं? आयु के साथ आने वाली जीर्णता पर क्या आपका नियंत्रण है? क्या आप का अपनी मृत्यु पर नियंत्रण है? क्या आप नहीं चाहते कि आपका शरीर महाबलशाली हो, अतुल्य रूप राशि का स्वामी हो, आप यदि यह सब चाहते हैं तो क्या आप यह कर सकते हैं इस तरह से आपका अपने शरीर के रूप संज्ञा, संस्कार पर कितना नियंत्रण है?'

सच्चक् से कुछ उत्तर देते नहीं बना यह प्रश्न भगवान बुद्ध ने तीन बार किया। परंतु सच्चक् के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

भगवान ने पुन: प्रश्न किया

'क्या मानते हैं अग्निवेश! क्या रूप आपकी आत्मा है, संज्ञा, संस्कार विज्ञान आपकी आत्मा हैं और आपका उन पर पूर्ण नियंत्रण है?'

'नहीं।'

'अग्निवेश! यह उत्तर आपके पहले के उत्तर से मेल नहीं खाता! कृपया समझ कर उत्तर दें।'

'रूप अनित्य है या नित्य?'

'अनित्य।'

'जो अनित्य है वह सुख रूप है या दु:ख रूप है?'

'दु:ख रूप?'

'जो अनित्य है, परिवर्तनशील है, दुखस्वरूप है उसके लिए यह कहना कि यह मेरी है, उचित है कि यह मेरी आत्मा है मैं इसका हूँ क्या उचित है?'

'नहीं।'

'तो क्या मानते हैं अग्निवेश ! यह संज्ञा, संस्कार विज्ञान मेरा है, यह मेरी आत्मा है?'

'नहीं।'

'तो क्या मानते हैं अग्निवेश ! यदि कोई आदमी दु:ख में पड़ा है, दु:ख का अनुभव कर रहा है और दु:ख को अपना मानता है और यह समझता है कि यह मेरी आत्मा है, तो क्या वह स्वयं को उस दु:ख से दूर कर पाएगा या स्वयं को वहाँ से हटा पाएगा?'

'यह कैसे होगा ऐसे में यह नहीं हटा पाएगा गौतम।'

'अग्निवेश ! जैसे कोई सारंवेशी व्यक्ति सार की खोज में केले के तने को काटे और उसकी परत उधेड़ता जाय और उसे कुछ न मिले उसी तरह आप अग्निवेश ! आप तो वैशाली की सभा में कहते थे कि मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखता जो मेरे सामने टिक सके। मैं देख रहा हूँ आपके पूरे शरीर पर पसीना आ रहा है और मेरे शरीर क्या माथे पर कोई पसीना नहीं ! सच्चक् को चुप देख कर वहाँ बैठे दुर्मुख नामक व्यक्ति बोले-

भगवान ! अब मुझे भी एक उपमा याद आती है। जैसे गाँव के पास की पुष्करिणी मे कोई केकड़ा हो वहाँ बहुत सारे बच्चे खेलने जाएँ और वे पानी में से उस केकड़े को बाहर निकाल कर रख दें। वहाँ से वह केकड़ा पानी में वापस जाने के लिए जिस तरफ से ही आगे बढे उसी तरफ का अंग बच्चे लकड़ी से काट दे। इस तरह केकड़ा चारों ओर से भागने का प्रयास करे और चारों तरफ से ही बच्चे उसे काट काट कर चलने फिरने के अयोग्य बना दें और वह दोबारा वापस पानी में न जा सके। वैसे ही भगवान अपने सच्चक् के चारों रास्ते बन्द कर दिए अब यह न आगे बढ़ सकते हैं और न वापस जा सकते है, आपने तो इनके सारे अभिमान काट दिये अब यह आपसे शास्त्रार्थ करने योग्य नहीं रहे। सच्चक् ने नाराज होते हुए दुर्मुख से कहा-

'ठहरें दुर्मुख ! अभी मैं गौतम से वार्ता कर रहा हूँ इसलिए बीच में मत बोलें। रहने दें गौतम आप कृपया यह बतावें कि अपने शिष्यों को आप किस तरह की शिक्षा देते हैं?'

'अग्निवेश ! मैं अपने शिष्यों को यह बताता हूँ कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान यह सारे मिल कर भले ही शरीर का व्यक्तित्व बनाते हैं, लेकिन यह अनित्य हैं और नाशवान हैं यही नहीं विश्व में कोई भी वस्तु नित्य या स्थाई नहीं है। समस्त वस्तुएँ नाशवान हैं और उनकी आभा रंग रूप आदि में परिवर्तन होता रहता है अत: यह आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है। और उस पर विश्वास करने का कोई कारण भी नहीं है। मैं शिष्यों को यह भी बताता हूँ कि जीवन में दु:ख है ओर दुख ही नहीं जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण होता है बिना कारण के कोई घटना नहीं होती है। कोई ईश्वर या अलौकिक शक्ति नही है जो किसी कार्य को कर सके उसी तरह से यदि दु:ख है तो उसका कारण भी होगा यदि दुख के कारणों को जानकर उस कारण को नष्ट या समाप्त कर दिया जाए तो दु:ख भी समाप्त हो जाता है, यह दु:खों को समाप्त करने का मार्ग ही मध्यम मार्ग है जिसे अष्टांग मार्ग कहते है।'

ऐसा कहने पर सच्चक् बोले- 'गौतम! हम ही अभिमानी हैं, प्रगल्भ हैं जो हमने आपके साथ शास्त्रार्थ करने की ठानी भगवान! एक बार मुक्त हाथी से तो टक्कर ले कर जीत जाना सम्भव हो सकता है परंतु आपसे शास्त्रार्थ कर जीतना असम्भव है, घोर विष वाले सर्प से भिड़कर भी कल्याण हो सकता है, भयंकर अग्नि में कूदकर भी बच पाना सम्भव है परंतु आपसे शास्त्रार्थ मे पार पाना सम्भव नहीं है। आपसे अनुरोध है कि संघ के साथ मेरा कल का भोजन स्वीकार करें।' भगवान के द्वारा रहकर स्वीकृति दी गई। भगवान से स्वीकृति मिलने के पश्चात सभा में उपस्थित सभी लिच्छवि गण प्रधानों से सच्चक् ने कहा-

'इस सभा में उपस्थित सभी लिच्छवि गण प्रधान या उनके प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित सभी सदस्य सुनें, मैंने भगवान गौतम बुद्ध से प्रवृज्या प्राप्त कर ली है और मैंने कल दोपहर का भोजन कराने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया है। अब आप लोग जो उचित समझें वह करें। लिच्छवि गण प्रधानों के द्वारा सभी लोगों के लिए भोजन हेतु पर्याप्त स्थालीपाक (कच्चा भोजन बनाने हेतु पर्याप्त सामग्री) सच्चक् के आश्रम में भिजवाई। उन स्थालीपाकों से सच्चक् के द्वारा अगले दिन प्रातः पूरे भिक्षु संघ के लिए भोजन की व्यवस्था की गई और भगवान बुद्ध को संघ के साथ भोजन कराया। इस प्रकार अंतिथ रूप से सच्चक् अपनी पूरी परिषद् के साथ भगवान के शिष्य हो गए।

*****

38. चुल्लतंहासंख्य सूत्र

यह सूत्र पूरी तरह प्रक्षिप्त है और बाद में जोड़ा गया है। यह सूत्र महा तहासंख्य सूत्र को लेकर अतिरंजित और अविश्वसनीय तथ्यों को प्रदर्शित करता है। यह भगवान बुद्ध की शिक्षाओं से मेल नहीं खाता और सूत्रों का विकृत रूप है। अतः इसे अनावश्यक मान कर छोड़ दिया गया है।

*****

39. महातन्हासंख्य सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा जीव चेतन मन आदि गूढ़ विषयों के शरीर से सम्बंध तथा उसकी निरन्तरता पर प्रकाश डालते हुए द्वादशांग प्रतीतत्य समुत्पाद को अच्छी प्रकार समझाया गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिंडक के जेतवन में विहार करते थे। एक दिन आराम के भिक्षुओ ने सुना कि सति केवटपुत्त नाम के भिक्षु ऐसा कह रहे हैं कि भगवान के द्वारा बताया गया विज्ञान / जीव चेतन ही शरीरों में संसरण (आवागमन) करता हैं। शरीर के नष्ट हो जाने पर यही विज्ञान चेतन ही दूसरे शरीर में संधावन करता है। अर्थात आत्मा की तरह एक शरीर से दूसरे शरीर मे आवागमन करता है। यह बात उन भिक्षुओ ने भगवान बुद्ध को बतायी तो उन्होंने साति केवट पुत्र से इसके बारे में पूछा।

आयुष्मान! आपने मुझे ऐसा बताते हुए कब सुना कि जीव चेतन मृत्यु के उपरांत दूसरे शरीर में प्रवाह करता है, आवागमन करता है। मैंने तो जीव और चेतन को अनेकों प्रकार से प्रतीत्य समुत्पन्न (कैसी न किसी कारण से उत्पन्न) बताया है। विज्ञान हमेशा किसी न किसी कारण से उत्पन्न होता है और वह कारण समाप्त हो जाने पर विज्ञान भी समाप्त हो जाता है संसरण नहीं करता, कहीं आवागमन नहीं करता, किसी एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में नहीं जाता। यदि विज्ञान[1] (जीव / चेतन जिसे आगे कहीं कहीं आत्मा भी कहा गया है) संसरण करेगा तो वह अविनाशी व नित्य हो जायेगा और हमेशा उपस्थित रहेगा। जब कि विज्ञान क्या कोई भी तत्व अविनाशी नहीं होता है। यह बात मैं एक बार पुन: समझाता हूँ।

यह पांच स्कंध हैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान।

1. किसी वस्तु या जीव का आकार, रूप कहा गया है, इसमें पृथ्वी अग्नि, वायु और जल शामिल है।
2. सुख-दु:ख आदि को महसूस करना वेदना कहलाता है।
3. होश या अभिज्ञान को संज्ञा कहते हैं। वेदना के उपरान्त हमारे मस्तिष्क पर जो अंकन होता है उसे संज्ञा कहते हैं।
4. रूप की वेदनाओं और संज्ञा की जो छाप मस्तिष्क पर पड़ी होती है, पहले से मस्तिष्क में अंकित पहिचान से मेल कराने को संस्कार कहते हैं जैसे हम यदि अंगुलिमाल को पहिले से पहिचानते हैं, तो उस दोबारा देखने पर समझ जाते हैं कि यह वही अंगुलिमाल

है।

5. रूप, वेदना, संज्ञा और संस्कार के समामेलन से जो चेतना उत्पन्न होती है वह विज्ञान कहलाती है जिस कारण या प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है वही उसकी संज्ञा या नाम होती है? जैसे आँखों के कारण जो विज्ञान (चेतना) उत्पन्न होती है उसे चक्षुर्विज्ञान कहते हैं, सुनने के कारण जो विज्ञान उत्पन्न होता है उस श्रोत्विज्ञान कहते हैं और इसी तरह से जिह्वा से रसविज्ञान, नासिका से घ्राणविज्ञान त्वचा से उत्पन्न विज्ञान कायविज्ञान कहलाता है। मन से उत्पन्न विज्ञान मनविज्ञान जैसे धर्म या तर्क का सुनना और उससे सम्बन्धित विज्ञान।

यह पाँचों स्कंध अपने अपने आहार से उत्पन्न होते है। यह शाश्वत या नित्य नहीं हैं यहा पाँचों स्कंध एक दूसरे से जुड़े हैं। भोजन या पथ्य से शरीर का पोषण होता हैं जिससे रूप उत्पन्न होता है, रूप के कारण वेदना (सुख – दुःख अच्छा बुरा की अनुभूति होती है), उससे संज्ञा, और क्रमशः संस्कार और विज्ञान उत्पन्न होता यह पाँचों स्कंध अपने आहार या स्रोत से विकसित होते हैं। यह आहार चार तरह का होता है–

1. कवलीकार– मुख से कौर ग्रहण करना,
2. स्पर्श, स्पर्श से संचेतना का होना,
3. मन: संचेतना मन मे विचार का तृप्ति लाभ प्राप्त करना,
4. विज्ञान स्रोत संचेतना उत्पन्न करने वाला विचार।

यह आहार कहाँ से उत्पन्न होता है?

आहार की उत्पत्ति तृष्णा से होती है।

तृष्णा ही इसका मूल है

तृष्णा का कारण है वेदना ;

वेदना का कारण है स्पर्श;

स्पर्श का कारण है षड़ायतन, अर्थात

(आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा और मन)

षडायतन का कारण है नाम रूप;

नामरूप का कारण है विज्ञान;

विज्ञान का कारण है संस्कार;

और संस्कार का कारण है अविद्या यह अविद्या अपने चक्र को 12 अंगों में दोहराती है। इसे ही द्वादशांग प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं।

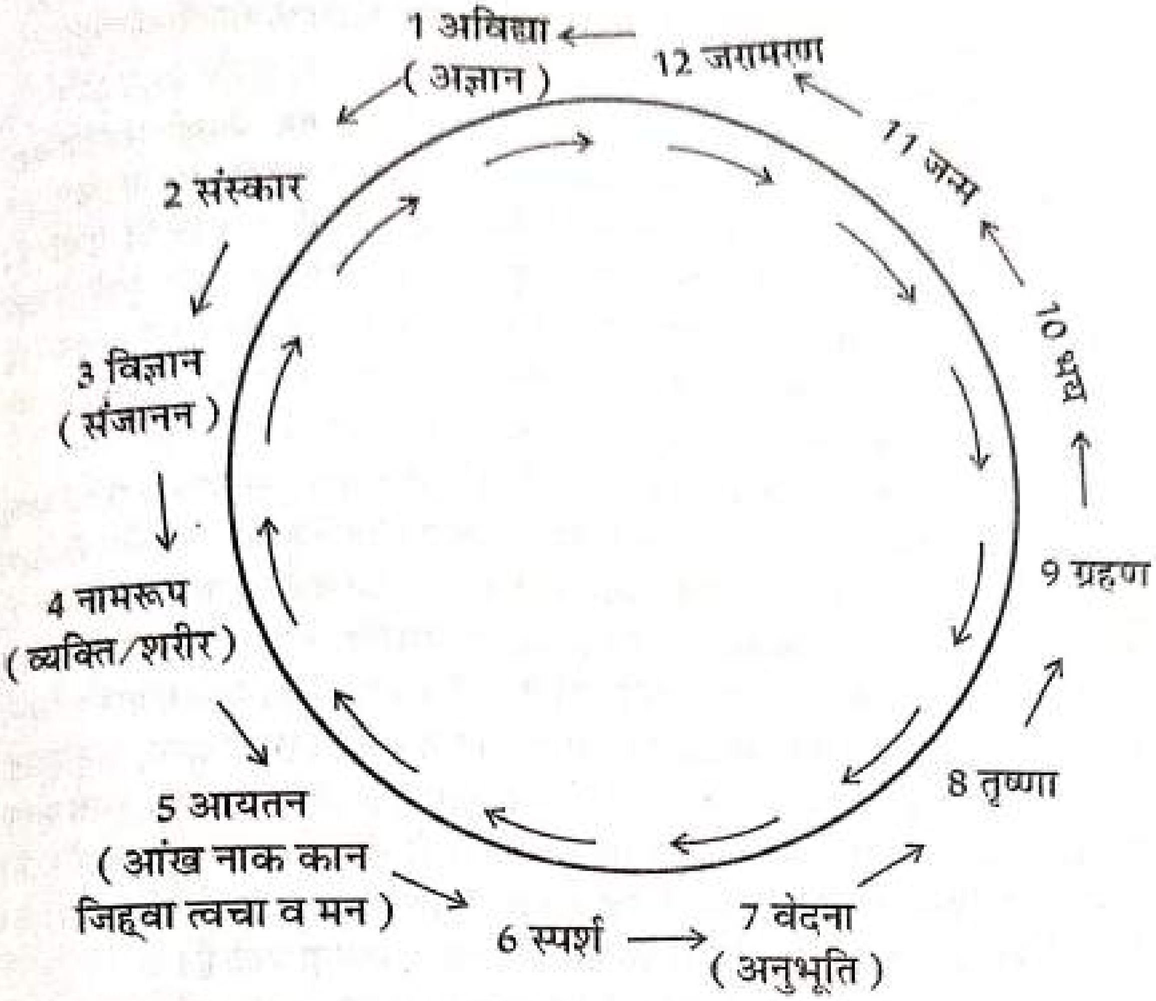

द्वादशांगप्रतीत्यसमुत्पाद

इस तरह जो पैदा होने वाला है वह नष्ट होगा जिसकी उत्पत्ति का कारण है, उसके नष्ट होने का भी कारण होगा। पाचों स्कंधों की उत्पत्ति जिसमें रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और जिज्ञान शामिल हैं यह अपने आहार से उत्पन्न होते हैं और निश्चित रूप से आहार के रोक देने से वह निरूद्ध हो जायेंगे। यदि व्यक्ति का हवा, पानी, भोजन रोक दिया जाय तो सारी गतिविधियां रुक जायेगी। ऐसा होने से पर जीव को आहार, वायु, जल, भोजन स्पर्श मनः संचेतना न होने से न तो रूप उत्पन्न होगा न ही वेदना और संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान भी उत्पन्न नहीं होंगे।

इस प्रकार यह उत्पन्न और नष्ट होने वाला है। यह शाश्वत या नित्य नहीं है।

इसी प्रकार यदि अविद्या को रोक दिया जाये संस्कार रुक जाता है। संस्कार के रुकने से विज्ञान रुक जाता है, विज्ञान के रुकने से नाम रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना तृष्णा उपादान, भव और जन्म, निरुद्ध हो जाता है इसी से सारे दुखों की रोक हो जाती है।

अब ऐसा हो जाने से क्या यह प्रश्न उठता है कि हम पूर्वकाल में थे या नहीं थे। यदि हम पूर्व काल में थे तो कहाँ और किस रूप में थे।'

'नहीं।'

'अब क्या यह प्रश्न उठता है कि भविष्य में हम क्या होंगे या होगे भी या नहीं?'

'नहीं।'

उपरोक्त प्रकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व जन्म तथा वर्तमान में जीव कहाँ से आया और कहाँ जायेगा। अर्थात आत्मवाद से जुड़े प्रश्त ही गलत हैं। यह कौतूहल पूर्ण प्रश्न और उसका दिमाग की लम्बी उड़ान से सम्बंधित उत्तर ही विभिन्न धर्मों का आधार है। व्यक्ति धरती पर ही जन्म लेता है और धरती पर ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मृत्यु के साथ ही मनुष्य के पाँचों स्कंध नाम रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान अपने अपने आहार के निरुद्ध हो जाने के कारण निरुद्ध हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। यहाँ शरीर से कुछ (आत्मा) निकल कर आकाश में विलीन नहीं होता है।

तीन उपमानों के एकत्र होने से गर्भ धारण होता है। माता-पिता एकत्र होते हैं माता ऋतुमती होती है और गंधर्व (उत्पन्न होने का चेतना प्रवाह) उपस्थित होता है। तो गर्भ धारण होता है। माता उसे 9 या 10 महीने तक अपने शरीर में धारण करती है। माता अपने लोहित से उसे पोसती है, शिशु का जन्म होता है। उसके उपरांत भी माता अपने दूध से उसका पोषण करती है। बच्चा कुछ समय बाद बड़े होने पर खिलौनों से खेलता है। वयस्क होने पर पांच प्रकार के विषय भोगों (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श) का सेवन करता हुआ, अनुकूलता प्रतिकूलता आदि के अनुसार अनुरोध, विरोध मे पड़ा हुआ सुख और दु:ख का अनुभव करता है, उसका अभिनंदन करता है। यह सब करते या होते ही नंदी या तृष्णा उत्पन्न होती है। वेदनाओं के विषय में यह जो तृष्णा है यह उसका उपादांन (ग्रहण करने की इच्छा) है। जिससे भव (आवागमन) होता है तथा जरा मरण का चक्र प्रारम्भ हो जाता है।

जब व्यक्ति अविद्या को समझ लेता है, और उसकी नि: सारता को समझ लेता है और अविद्या की नि:सारता को समझ कर ही अविद्या के प्रवाह को निरुद्ध कर लेता है तो अविद्या के निरुद्ध होने से क्रमश: संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श, आवागमन और जरा मरण का निरोध हो जाता है और मनुष्य के दुख व कष्ट सीमित हो जाते है या समाप्त हो जाते है।

भिक्षुओ ! इस प्रकरण को तृष्णा संशय विमुक्ति (तंहा संख्यायन अर्थात तृष्णा के विनाश से होने वाली मुक्ति) के नाम से धारण करो। केवट साति पुत्र यदि नहीं समझता है तो उसे तृष्णा के महाजाल में फंसा जानो।

भगवान के इस सम्भाषण से संतुष्ट हो समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने अभिभाषण का अभिनन्दन किया।

पाद टिप्पणी

1. यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि जिसे भगवान बुद्ध के द्वारा विज्ञान या चेतन कहा गया है उस ही बाद में आत्मा कहा गया है। जबकि भगवान बुद्ध के द्वारा यह भली-भाँति स्पष्ट किया गया है कि विज्ञान या चेतन कोई एक वस्तु या तथ्य नहीं है यह शरीर की विभिन्न इंद्रिय आँख नाक, कान, जिह्वा, त्वचा के स्तर से जो रूप, वेदना, संज्ञा और संस्कार के माध्यम से जो अनुभव होता है वही विज्ञान कहलाता है।
2. जिस प्रकार अग्नि कई उपदानों से उत्पन्न होती है। जिस उपादान से वह उत्पन्न होती है वही उसकी संज्ञा होती है जैसे लकड़ी से उत्पन्न अग्नि काष्ठाग्नि, तृण से उत्पन्न अग्नि

तृणअग्नि, गोबर से प्रदीप्त अग्नि कंडे की आग कहा जाती है।

3\. बौद्ध दर्शन और ब्राह्मण धर्म दर्शन मे यह मौलिक अन्तर है, जहाँ ब्राह्मण धर्म दर्शन शरीर में एक जीव का सतत निवास मानता है और उसे आत्मा का नाम दिया है। यह माना जाता है कि आत्मा अमर है, शाश्वत है अविनाशी है। यह बार बार जन्म ग्रहण करती है कभी किसी जीव के रूप में और कभी किसी जीव के शरीर में संसरण करती रहती है परंतु वह नष्ट नहीं होती उसका संसरण होता रहता है और उसका अविच्छिन्न प्रवाह बना रहता है। इस उपदेश में भगवान बुद्ध के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि जीवों में संसरण या आवागमन या प्रवाहित होने वाली कोई वस्तु नहीं होती है। उनके एक शिष्य केवट साति पुत्र को यह शंका हो गई थी कि भगवान के द्वारा यह बताया गया है कि वास्तव में जीवों में एक जन्म से दूसरे जन्म में संसरण करने वाली कोई वस्तु होती है। यह पाँचों स्कंध जिनसे शरीर का निर्माण तथा विकास होता है, वह किसी न किसी कारण से उद्‌भूत हैं और जो उद्‌भूत है वह नाशवान है धरती पर इस भौतिक विश्व में कोई वस्तु या अमर या शाश्वत नहीं है। जिस कारण या प्रत्यय से जो वस्तु उत्पन्न होती है उस कारण या पृत्यय के समाप्त होने से वह भी समाप्त हो जाती है .....

बौद्ध संस्कृति (राहुल सांकृत्यायन) से

*****

40. महा अश्वपुर सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा श्रमणों के गुणों का विवेचन किया गया है। एक श्रमण में क्या गुण होने चाहिए और क्या दुर्गुण नहीं होने चाहिए इसका विवरण दिया गया है। एक सच्चा और वास्तविक श्रमण या ब्राह्मण होने के लिए भिक्षु को क्या कृत्य करना चाहिए और क्या कृत्य नहीं करना चाहिए, इसका विवरण देते हुए विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

ऐसा मैंने सुना -

एक समय भगवान बुद्ध अंग देश के अश्वपुर में विहार करते थे। एक दिन दोपहर के भोजन और विश्राम के पश्चात उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! तुम्हें श्रमण कहा जाता है, श्रमण के नाम से समाज, ग्राम तुम्हें भोजन, आदर और सम्मान देता है। अत: तुम्हें यह भली प्रकार ज्ञात होना चाहिए कि श्रमणों के लिए उत्तम धर्म क्या है? मैं इसका विस्तार से वर्णन करता हूँ ध्यानपूर्वक सुनो-

हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध होना चाहिए अर्थात हमें शरीर से ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए जिससे दूसरों, यहाँ तक कि पशु पक्षियों को भी कष्ट हो। हमारा शारीरिक आचरण हमेशा खुला रहेगा कहीं भी ढका या छिपा हुआ नहीं होगा। हम आपने इस शारीरिक आचरण के लिए कही भी अभिमान नहीं करेंगे। इसे हम अपना पावन कर्त्तव्य एवं समाज के प्रति दायित्व मानकर करते रहेंगे। हमारा वाचिक और मानसिक आचरण भी परिशुद्ध, खुला और सभी के कल्याण के लिए होगा। यहाँ तक कि किसी व्यक्ति ही नहीं वरन पशु-पक्षियों को भी कष्ट न हो। इस आचरण के लिए हम न तो कोई अभिमान ही करेंगे और न ही किसी से यह अपेक्षा करेंगे कि इन सदाचारों के बदले हमें कुछ लाभ प्राप्त हो। यह सब करते हुए मात्र इतने से ही संतुष्ट नहीं होंगे। हम भोजन में परिमाण या मात्रा का ध्यान रखेंगे। भोजन को भली प्रकार समझकर अपने शरीर की आवश्यकता के अनुसार ही ग्रहण करेंगे। हम केवल उतना ही ग्रहण करेंगे जितना शरीर के पोषण के लिए आवश्यक हो परंतु उससे आलस्य न आवे, मद, विभूषण, शारीरिक सौष्ठव उत्पन्न न हो, शरीर में वसा संचित न हो, ब्रह्मचर्य की भावना प्रभावित न हो। हम कभी विकाल भोजन नहीं करेंगे। हम जागरण में हमेशा तत्पर रहेंगे, दिन में हमेशा स्मृतिमान रहते हुए आचारणीय धर्म से स्वयं को संलग्न रखेंगे। रात्रि के बीच के प्रहर में पैर पर पैर रखकर स्मृति को उपस्थित रखते हुए उठने का विचार मन में करते हुए दाहिनी करवट सिंह शैया में विश्राम करेंगे। हम हमेशा स्मृतिमान रहेंगे, कभी भी आलस्य या प्रमाद नहीं करेंगे तथा ज्ञान और चिंतन के नए-नए मार्गों की तलाश में लगे रहेंगे। हम लज्जावान तथा संकोच वाले बनेंगे। हम केवल दिया हुआ ही लेने वाले बनेंगे, अर्थात किसी भी दशा में चोरी या अपहरण की बात भी नहीं सोचेंगे। हम प्रतिदिन विपश्यना की साधना और अष्टांग मार्ग को कंठस्थ करते हुए अभ्यास करने वाले होंगे।

ऐसा करने से भिक्षु श्रमण कहा जाता है और ऐसा करने में उसमें बुराइयों समाप्त हो जाती हैं। और वह श्रामण्य को प्राप्त होता है। इस प्रकार ऐसा जिसकी बुराइयाँ बहा दी गई हों, उसे ब्राह्मण कहते हैं। (न कि ब्रह्म के मुख से उत्पन्न); जिसकी बुराइयाँ निकल गई हो उसे श्रोत्रिय कहते हैं; जिसकी बुराइयाँ दूर हो गई हो उसे आर्य कहते हैं।'

भगवान के सम्भाषण से संतुष्ट हो सभी उपस्थित भिक्षुओ ने भगवान का अभिनंदन किया।

41. चुल्ल (लघु) अश्वपुर सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के द्वारा यह बताया गया है कि किन कार्यों को करने मात्र से ही कोई व्यक्ति श्रमण नहीं हो जाता, अथवा ऐसे कौन से कार्य हैं जिनसे श्रामणत्व प्राप्त नहीं होता है। इस सूत्र में श्रामण्यता के लिए हटाए जाने वाले दुर्गुणों का विवेचन करते हुए **श्रामण्य समीचि प्रतिपदा** का वर्णन किया गया है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध अंग देश के अश्वपुर में विहार करते थे। एक दिन दोपहर के भोजन और विश्राम के पश्चात उन्होंने भिक्षुओ को सम्बोधित किया।

'भिक्षुओ! श्रामन्य को सच करने वाले मार्ग क्या हैं जिन पर भिक्षु को चलना चाहिए और ऐसे कौन से कार्य हैं जिनके करने मात्र से वह श्रमण नहीं होता है। इसका विवरण देता हूँ, ध्यान लगाकर सुनो–

जिस किसी भिक्षु का लालच, द्रोह, क्रोध, मोह, निष्ठुरता, सांसारिक वस्तुओं, सेवाओं के प्रति लगाव, उसकी अभिलाषा, मात्सर्य, कंजूसी, मिथ्या दृष्टि समाप्त नहीं हुई, वह वैसी ही बनी हुई है जिस प्रकार पहले थी, तो वह वैसे ही है, जैसे चादर में लिपटी हुई कटार। ऊपर से देखने में तो श्वेत वस्त्र है परंतु नीचे घातक हथियार छिपा हुआ है, ऐसा भिक्षु इसी के समान होता है।

भिक्षुओ! संघाटी (भिक्षु वस्त्र) धारण किए हुए भिक्षु के संघाटी धारण करने मात्र से श्रामन्यता नहीं आती, वस्त्र हीन (दिगम्बरों की भाँति) रहने से, जलवासी रहने से, एकाहारी रहने से, वृक्षमूलिक होने से, सदा खड़े रहने का व्रत लेने से, वेदपाठी के वेदाध्यन करने मात्र से, जटाधारी साधु के मात्र जटाधारण करने से, तिलक और त्रिपुंड धारण करने से, चोटी और यज्ञोपवीत धारण करने से अथवा सिर मुंडा लेने से तथा इस प्रकार के भौतिक चिन्ह धारण कर लेने से श्रामन्यता नहीं आती है। यदि मात्र संघाटी धारण कर लेने से ही व्यक्ति की क्रोध, मोह, लालच, ईर्ष्या, मात्सर्य शठता आदि समाप्त हो जाते तो माता-पिता उसे तत्काल ही संघाटी धारण करवा देते और संघाटिकता का उपदेश करते कि मात्र संघाटी धारण कर लेने से ही तेरे सारे दुर्गुण दूर हो जाएँगे। परंतु ऐसा नहीं है। भिक्षु वस्त्र धारण किया हुआ भिक्षु भी इन दुर्गुणों से ग्रसित रहता है। अतः संघाटी धारण करने मात्र से ही मैं श्रामण्यता नहीं मानता।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णित वस्त्रहीनता का आचरण, दिगम्बरों की भाँति आचरण तथा अन्य सभी भौतिक तथ्यों जिनका विवरण ऊपर दिया गया है, से लेकर वेद पाठी होने से और तिलक त्रिपुण्ड धारण करने से किसी को श्रामण्यता नहीं प्राप्त होती हैं। यदि ऐसा करने मात्र से व्यक्ति की बुराईयाँ समाप्त हो जाएँ तो उसके बंधु-बांधव उसे तत्काल ही यह सारी

वस्तुएँ धारण करा देते परंतु ऐसा नहीं है। ऐसा करने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता।

भिक्षुओ! जिस व्यक्ति का लोभ, क्रोध, मोह, निष्ठुरता, ईर्ष्या, कंजूसी, शठता, मिथ्या दृष्टि समाप्त हो गई हो वह इन बुराईयाँ के न रहने के कारण श्रामण्य मार्ग पर अग्रसर होता है। उसे सांसारिक प्रलोभनों से कोई मतलब नहीं रहता है, वह अपने शरीर के वस्त्र, भोजन और जल से ही संतुष्ट रहता है। ऐसा होने पर उसमें सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना उत्पन्न होती है, उसमें आस- पास के वातावरण में होने वाली घटनाओं के प्रति उपेक्षा भाव भी उत्पन्न होता है जिससे आस-पास के रहने वाले जीव-जंतु भी तुष्ट होते हैं। यह श्रमण समीचि प्रतिपदा है।

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में धूप से परेशान कोई पथिक सुंदर तालाब को देख कर आकृष्ट हो और बिना किसी शंका के वहाँ वृक्ष की छाया में जाकर विश्राम करे तथा उस वृक्ष की छाया और तालाब की शीतलता के कारण सुख प्राप्त करे, वैसे हो भिक्षुओ! किसी भी कुल से आया व्यक्ति प्रवृजित होकर अथवा प्रव्रजित हुए बिना उपासक के रूप में उपरोक्त श्रमण समीचि प्रतिपदा के माध्यम से मैत्री, उपेक्षा का अभ्यास करता है तो वह इसी जन्म में इसी शरीर में शांति और मुक्ति प्राप्त करता है श्रामणत्व प्राप्त करता है।'

भगवान के भाषण से संतुष्ट हो समस्त उपस्थित भिक्षुओ ने भगवान का अभिनंदन किया।

*****

42. सालेय्यक सूत्र

कोशल स्थित ब्राह्मण ग्राम ''शाला'' के निवासियों को दिए गए इस उपदेश में भगवान के द्वारा धर्माचण और अधर्माचरण पर प्रकाश डाला गया है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध महान भिक्षु संघ के साथ कोशल में विहार करते थे। एक दिन वह विहार करते हुए ब्राह्मणों के ग्राम जिसका नाम शाला था वहाँ पहुँचे। शाला ग्राम के ब्राह्मणों ने जब यह सुना कि भगवान बुद्ध उनके ग्राम में पधारे हैं तो वहाँ के लोग उनसे मिलने पहुँचे और पूछा–

'भगवान! वह क्या कारण हैं जिससे व्यक्ति इस जीवन और जीवन के पश्चात मृत्यु के उपरांत सुगति अर्थात स्वर्ग को प्राप्त होता है और क्या कारण है या क्या प्रत्यय है जिससे व्यक्ति दु:ख को प्राप्त होता है और मरणोपरांत नरक को प्राप्त होता है ऐसा सुना जाता है?'

'गृहपतियों! धर्माचरण करने के कारण व्यक्ति इस जीवन में भी सुख प्राप्त करता है और जीवन के पश्चात भी स्वर्ग अथवा शान्ति प्राप्त करता है। इसके विपरीत अधर्माचरण करने पर व्यक्ति इस जीवन में भी दु:ख प्राप्त करता है और जीवन के बाद मृत्यु के उपरांत भी कष्टही प्राप्त करता है अर्थात नरकगामी होता है।'

'भगवान! यह तो आपने अत्यन्त सूक्ष्म में उत्तर दे दिया। यह हमारी समझ में नहीं आया कि धर्माचरण क्या है और अधर्माचरण क्या है, हम तो यह जानते हैं कि ऋषियों, गुरुजनों, श्रमणों को दान देना हिंसा न करना ही धर्माचरण है। अत: कृपया विस्तार से बताएं कि धर्माचरण और अधर्माचरण क्या है?'

'गृहपतियों! अधर्माचरण तीन तरह का होता है,

1. **शारीरिक अधर्माचरण**
2. **वचन का अधर्माचरण**
3. **मानसिक अधर्माचरण**

पुन: शारीरिक अधर्माचरण तीन तरह का होता है,

1. हिंसक होना
2. चोरी करना
3. कामो (मैथुन संभोग) में रत रहना या मिथ्याचारी होना।

इसी तरह वचन से किया गया अधर्माचरण चार तरह का होता है–

1. मिथ्यवादी होना झूठ बोलना, झूठी गवाही देना।

2. चुगली करने वाला होना।
3. कटुभाषी होना।
4. व्यर्थ बकवास करने वाला होना।

इसी तरह से मानसिक अधर्माचरण तीन तरह का होता है-

1. लालची होना
2. द्वेष रखने वाला होना
3. मिथ्या दृष्टि वाला होना अर्थात सुक्रत, दुष्क्रत अच्छा बुरा, पाप-पुण्य आदि को न मानने वाला होना।

इस प्रकार के आचरण अधर्माचरण हैं इससे व्यक्ति नरकगामी होता है और मृत्यु के पूर्व भी नर्क के समान दुःख पाता है। इसके विपरीत कार्य जाने वाला आचरण धर्माचरण कहलाता है।

जैसे हिंसा नही करना, चोरी, नहीं करना या अदत्तदान नहीं लेना, व्यभिचार में रत रहना, झूठ नहीं बोना, झूठी गवाही नहीं देना, चुगली नहीं करना, मृदु भाषी होना, अल्पभाषी होना, लालच नहीं करना, सभी से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना, सभी के लिए शुभेच्छु होना अर्थात सम्यक् दृष्टि रखना। इस प्रकार गृहपतियों धर्माचरण करने से व्यक्ति मृत्यु के बाद भी और इस जीवन में भी स्वर्ग प्राप्त करता है अर्थात प्रसाद, मुदित और धन धान्य सम्पन्न होता है। सो गृहपतियों! यदि धमार्चारी व्यक्ति यह आकांक्षा करे कि शरीर छोड़ कर मरने के उपरान्त मैं महाधनी क्षत्रिय होऊँ, या महाधनी ब्राह्मण होऊँ या प्रज्ञा से इसी जन्म ही विमुक्ति को जानकर बिना मृत्यु का इंतज़ार किये ही स्वर्ग तुल्य सुखों का आनन्द प्राप्त करूँ तो वह प्राप्त करेगा। इसलिए कि वह धमार्चारी है।'

आश्चर्य! भगवान अद्‌भुत! आपसे पहले जो भी ज्ञानी, श्रमण जितने भी मनीषी, विद्वान इस ग्राम में आए, उन्होंने सुख शांति और स्वर्ग का एक मात्र रास्ता दान-दक्षिण-पूजा पाठ ही बताया था, जिसमें धन व्यय होता था और वह सब धन उपदेशकों को प्राप्त जाता था। पहली बार ऐसा हुआ है कि इन सब से हट कर ऐसी चीज बताई गई है जिसमें हमारा कोई धन व्यय नहीं होना इसमें उपदेशक की कोई अपेक्षा भी नहीं है। भगवान आज से हमें अपना अंजलिबद्ध उपासक मानें।

*****

43. नंदकोवाद सूत्र

इस सूत्र में भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य नंदक के द्वारा भिक्षुणियों को दिए गए उपदेश का वर्णन किया गया है। संक्षेप में भगवान बुद्ध के उपदेशों का सार, निष्कर्ष इस सूत्र में विद्यमान है।

ऐसा मैंने सुना –

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार करते थे। वहाँ एक दिन प्रजापति गौतमी बहुत–सी भिक्षुणियों के साथ आई और अनुरोध किया कि उन्हें उपदेश करें उनका अनुशासन करें और धार्मिक कथा से सम्प्रहर्षित करें। उस समय वयोवृद्ध भिक्षु बारी–बारी से भिक्षुणियों का अनुशासन करते थे, उन्हें उपदेश करते थे। उस समय आयुष्मान नंदक के द्वारा उपदेश किए जाने का क्रम था और आयुष्मान नंदक अपनी नियत समय पर उपदेश नहीं करना चाहते थे। भगवान ने पूछा कि आज भिक्षुणियों को उपदेश करने की किसकी बारी है?' भिक्षुओ ने कहा कि आयुष्मान नंदक भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहते। इसी कारण से भिक्षुणियाँ आपके पास आई हैं। भगवान ने आयुष्मान नंदक से पूछा कि ऐसा क्यों है? आयुष्मान नंदक बोले–

'भगवान! भिक्षुणियाँ अभी अज्ञानी हैं और यह उपदेश को ठीक तरह समझ नहीं पाती हैं और उल्टे सीधे सवाल करती हैं।

आयुष्मान नंदक! यह उपदेशक की योग्यता है कि उपासक उसकी बात को सुनें और बीच में पृच्छा नहीं करें। यह श्रोताओं की कमी नहीं है कि वह पूरे ध्यान से बात नहीं सुनते। उपदेशक का भाषण ही ऐसा होना चाहिए जिससे श्रोता इस तरह प्रेरित हो कि वह ध्यान से सुने और केवल सुने ही नहीं वरन प्रश्न करे। मैं समझ रहा हूँ नंदक तुमने भिक्षुणियों को सीधा भाषण दिया होगा इसीलिए भिक्षुणियों को अरुचि हुई है। अत: नंदक तुम अपनी बात को प्रश्नोत्तर शैली में कहना, भिक्षुणियों से ही पूछना और फिर उसका उत्तर देना।

इसके साथ–साथ भिक्षुणियों को काम की चीजों के बारे में भी बताया करो ताकि भाषण रोचक हो। यह कहकर भगवान ने नंदक को निर्देशित किया कि अपने सम्बोधन और अभिभाषण से भिक्षुणियों का मार्गदर्शन करो।

भगवान बुद्ध के उक्त निर्देश सुनकर आयुष्मान नंदक यथा समय पिंडपात व दोपहर का विश्राम कर एक भिक्षु के साथ (आत्मद्वितीय हो) राजुकाराम पहुँचे और भिक्षुणियों को सम्बोधित किया।

'भगिनियों! आज मैं तुम्हे प्रश्नोत्तर शैली में व्याख्यान देता हूँ। मेरे प्रश्नों को ध्यान से सुनकर उत्तर देना।'

'भगिनियों! क्या मानती हो आँख नित्य है या अनित्य?'

'अनित्य है भंते!'

'जो अनित्य है वह दुखयुक्त है या सुखयुक्त?'

'दुखयुक्त भंते!'

'जो अनित्य है, दुखयुक्त है, परिवर्तनशील है उसे क्या अपना मानना और समझना उपयुक्त है?'

'नहीं भंते'

'ऐसे ही भगिनियों! कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, दिमाग अर्थात मन नित्य है या अनित्य? अर्थात हमेशा एक सा रहने वाला है या क्षरण होने वाला और नष्ट होने योग्य है?'

'भंते! यह सभी अनित्य अर्थात नष्ट होने योग्य है।'

'जो नष्ट होने वाला है अर्थात अनित्य है वह सुखयुक्त है या दुखयुक्त?'

'भंते! दुःखयुक्त!'

'जो दुःखयुक्त है परिवर्तनशील है नष्ट होने योग्य है उसे अपना मानना और अपना समझना कहाँ तक उचित है?'

'यह मानना उचित नहीं है भंते!'

'सो किसलिए?'

'इसलिए क्योंकि हमने पहले से ही प्रज्ञा से देखा था कि मेरे शरीर के अंदर के (आध्यात्मिक) अंग अनित्य हैं परिवर्तनशील है और नष्ट होने वाले हैं।

'साधु! भगिनियों साधु!! आर्य श्रावक को ठीक से प्रज्ञा से देखने से ऐसा ही मालूम होता है।

'इसी तरह से भगिनियों, आँखों से देखा जाने वाला रूप, कानों से सुना जाने वाला शब्द, जिहवा से आस्वाद किया जाने वाला स्वाद, त्वचा से स्पर्श कर आनंदित होने वाला स्पर्श क्या नित्य है?'

'नहीं भंते!'

'इसी तरह से भगिनियों आँखों और रूप के सम्मिलन से उत्पन्न चक्षुर्विज्ञान कर्ण और शब्द के सम्मिलन से उत्पन्न श्रोतविज्ञान, घ्राण अर्थात नासिका और गंध के सम्मिलन से उत्पन्न घ्राणविज्ञान, जिह्वा और स्वाद के सम्मिलन से जिह्वाविज्ञान, त्वचा और स्पर्श के मिलन से स्पर्शविज्ञान व धर्म तथा मन से बना मनोविज्ञान क्या नित्य हैं?'

'नहीं भंते!'

'जो नित्य नहीं है, अनित्य है, परिवर्तनशील है, वह दुःखयुक्त है, और उन्हें अपना मानना ठीक नहीं हैं।

'जैसे भगिनियों जलते हुए प्रदीप का तेल भी अनित्य है लौ भी अनित्य है। ऐसे में यदि कोई कहे कि इस प्रदीप की तेल अनित्य है बाती अनित्य है परंतु लौ नित्य है! तो यह गलत होगा क्योंकि लौ, तेल और बाती से ही तो उत्पन्न होती है और जब तेल और बाती अनित्य है तो लौ तो स्वतः ही अनित्य हो जाएगी। इसी प्रकार यदि कोई कहे कि जो मेरे शरीर के भीतर के आयतन हैं। उन आयतनों आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा और मन को लेकर जो सुख और दुःख उत्पन्न होता है वह नित्य है शाश्वत है तो क्या वह ठीक कहता होगा?

'नहीं भंते!'

'क्योंकि इन छहों आयतनों से ही तो इनकी उत्पत्ति होती है और उन आयतनों के निरुद्ध होने से उसके परिणाम भी निरुद्ध हो जाते हैं। जैसे भगिनियों! एक बडे वृक्ष के मूल

अर्थात जड़ भी अनित्य है शाख, पत्र भी नाशवान है तो उस वृक्ष के कारण उत्पन्न हो रही छाया भी अनित्य होगी इसलिए कि वृक्ष के न रहने पर छाया भी स्वत: ही समाप्त हो जागी। ऐसे ही भगिनियों ! हमारे छह आयतन जो अनित्य है उनसे उत्पन्न दुखावेदना या सुखावेदना भी अनित्य है नाशवान हैं, इस तरह भगिनियों ! हमारे छहो आयतनों से सम्बद्ध जो परिणाम हैं उनको अलग करने का जो मार्ग है वह है अष्टांग मार्ग की भावना करना। इस अष्टांग मार्ग को ही आगे चलकर बोधयड्ग भी कहा गया है। इसका का अभ्यास करने से व्यक्ति इसी जन्म में मुक्त होकर सुखाविहार करता है, और यही इस जन्म में ही मुक्ति का द्वार है।'

आयुष्मान नन्दक के इस संभाषण से सन्तुष्ट होकर समस्त उपस्थित भिक्षुणियों ने अभिनंदन किया।

*****

अनुक्रमणिका

मूल मज्झिम निकाय (राहुल सांकृत्यायन कृत)

(सम्यक प्रकाशन के द्वारा प्रकाशित ग्रंथ से)

क्रम सं.	सूत्र का नाम	पुस्तक की पाठ संख्या	मूल मज्झिम निकाय की पाठ संख्या
1.	कालाम सूत्र	1	
2.	वीमंसक सूत्र	2	47
3.	भूमिज सूत्र	3	126
4.	तेविज्जवच्छगोत्र सूत्र	4	71
5.	चंकि सूत्र	5	95
6.	पोतलिय सूत्र	6	54
7.	कायागतासति सूत्र	7	119
8.	सत्पुरुषधर्म सूत्र	8	113
9.	सल्लेख (तपश्चर्या) सूत्र	9	8
10.	सम्यक् दृष्टि सूत्र	10	9
11.	स्मृति प्रस्थान सूत्र	11	10
12.	सामगाम सूत्र	12	104
13.	उपालि सूत्र	13	56
14.	दक्षिणाविभंग सूत्र	14	142
15.	चुल्लमालुंक्य सूत्र	15	63
16.	महापुण्णं सूत्र	16	109
17.	गोपक मोग्गल्यायन सूत्र	17	108
18.	वृह्मायु सूत्र	18	91
19.	अश्वलायन सूत्र	19	93
20.	अनुपद सूत्र	20	111

21.	लोमकसंगियभद्देकरेत सूत्र	21	134
22.	चुल्लकम्म विभंग सूत्र	22	135
23.	धातुविभंग सूत्र	23	140
24.	पुण्योवाद सूत्र	24	145
25.	छ: छक्कक (षडायतन सूत्र)	25	148
26.	महाषडायतन सूत्र	26	149
27.	नगर विंदेय सूत्र	27	150
28.	पिंडपात (भिक्षा) परिशुद्ध सूत्र	28	151
29.	इंद्रिय भावना सूत्र	29	152
30.	चुल्लसकुलुदायि सूत्र	30	79
31.	कणत्तथलक सूत्र	31	90
32.	उद्देश्यविभंग सूत्र	32	138
33.	महागोसिंग सूत्र	33	32
34.	महागोपाल सूत्र	34	33
35.	चुल्लगोपाल सूत्र	35	34
36.	चुल्लसच्चक् सूत्र	36	35
37.	महासच्चक सूत्र	37	36
38.	चुल्लतंहासंख्य सूत्र	38	37
39.	महातन्हासंख्य सूत्र	39	38
40.	महा अश्वपुर सूत्र	40	39
41.	चुल्ल (लघु) अश्वपुर सूत्र	41	40
42.	सालेय्यक सूत्र	42	41
43.	नंदकोवाद सूत्र	43	146

भगवान बुद्ध के प्रमुख वर्षावास/उपदेश स्थल

क्रम सं.	जनपद का नाम	स्थल का नाम
1.	वाराणसी	ऋषिपतन मृगदाव
2.	राजगृह	शूकर खाता, ऋषिगिरि, वेणुवन (कलंदक निवाप), जीवक आम्रवन, गृध्रकूट
3.	वैशाली	महावन की कूटागार शाला
4.	कोशाम्बी	घोषिताराम
5.	श्रावस्ती	जेतवनाराम, पूर्वाराम
6.	कपिलवस्तु	न्योग्रोधाराम, महावन, मेदलुम्प, देवदह, सामगाम
7.	अगदेश	अश्वपुर, चम्पा
8.	कजंगल	सुवेणुवन
9.	नालन्दा	प्रवारिक, आम्बवन
10.	कोशल	ओप्साद, इच्छा नंगल, सालवतिका, ग्राम नगर विंदेय, मन साकट, शाला, नलकपान
11.	मगध	खाणुमत्त, मातुला
12.	उजुन्जा	कणत्थलक
13.	कुरू देश	कम्मसदम्म, थुल्लकोट्ठित
14.	कशीनारा	सालवन बलिहरण
15.	मंदिका	गिंजिकावसथ
16.	मल्लदेश	अनुपिय निगम
17.	उकट्ठा	सालवन
18.	मर्गदेश	सुंसुमारगिरि के भेषकलावन
19.	अंगुत्तराप	अंगुत्तराप निगम
20.	चातुमा	आमलकीवन
21.	मिथिला	मखादेव आम्बवन
22.	विदेह	विदेह

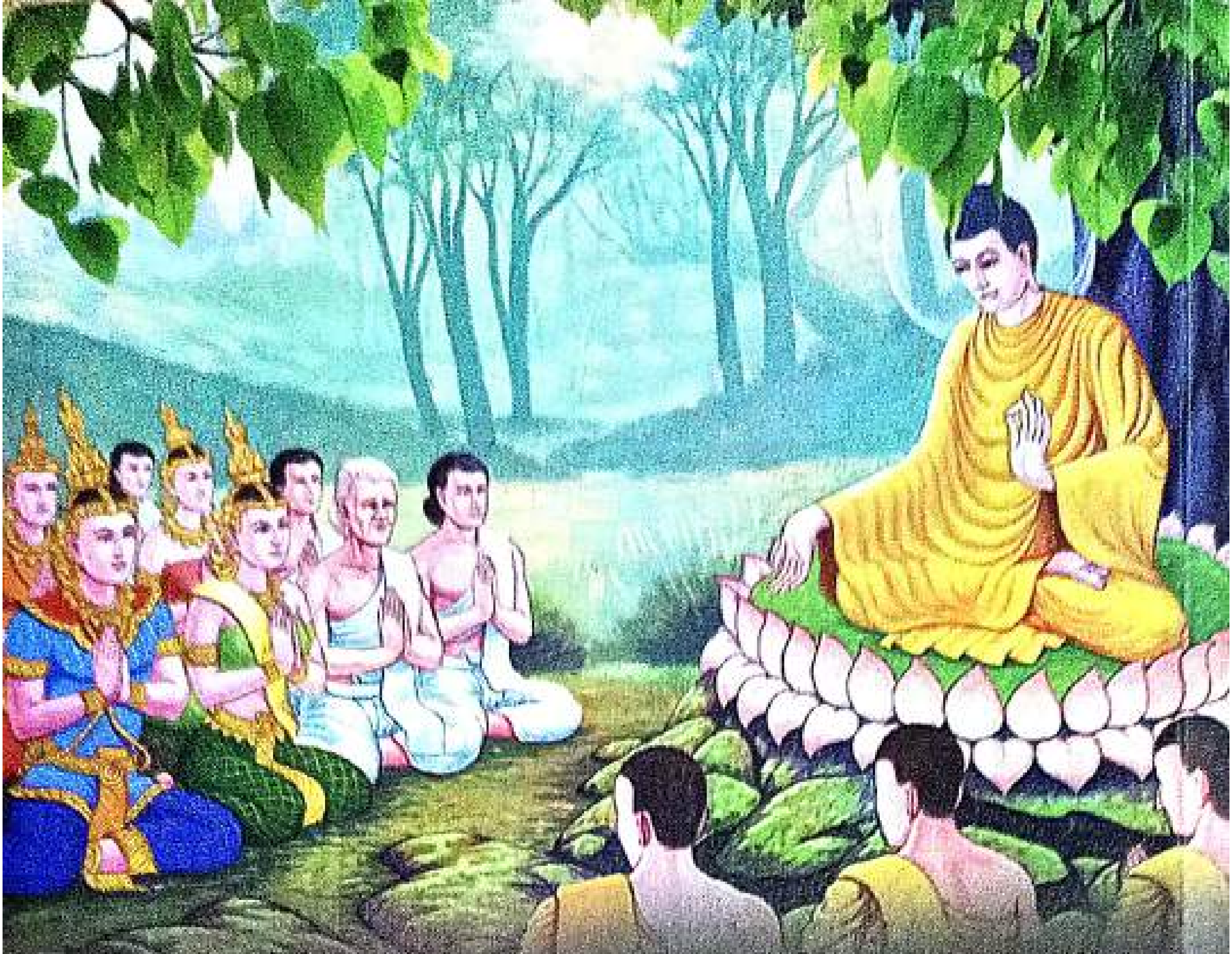

''किसी बात को इसलिए मत मानो कि ऐसा सदियों से होता आया है या परम्परा है। इसलिए मत मानो कि किसी धर्म शास्त्र में लिखा हुआ है या ज्यादातर लोग मानते हैं। किसी धर्मगुरू, आचार्य, साधु-संत, ज्योतिषी की बात को आँख मूंद कर मत मान लेना। किसी बात को सिर्फ इसलिए भी मत मान लेना कि वह तुमसे कोई बड़ा या आदरणीय व्यक्ति कह रहा है बल्कि हर बात को पहले तर्क, विवेक, बुद्धि, चिंतन व अनुभव की कसौटी पर तौलना, कसना और यदि वह बात स्वयं के लिए, समाज व सम्पूर्ण मानव जगत के कल्याण के हित में लगे तो ही मानना।''

Rs.150/-

प्रकाशन
बुद्ध अम्बेडकर कल्याण एसो0, उ0प्र0 (रजि.)
356/340/835 राजगार्डन कॉलोनी, आलमनगर, लखनऊ-226017
सम्पर्क सूत्र : 9415941920, Email : baks.gplakhmi@gmail.com
www.bodhisatvababasahebtoday.in

ISBN : 978-93-95044-37-0